प्रेमचंद की कहानियों में बाल मनोविज्ञान

(एम० फिल्० हिन्दी उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

2001

शोध-निर्देशक

डॉ० वीर भारत तलवार

शोधकर्ता

सुनील कुमार

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature & Culture Studies
New Delhi-110067, INDIA

Centre of Indian languages

Date : 23 July 2001

DECLARATION

I declare, that the material in this Dissertation entitled **"PREMCHAND KI KAHANIYON MEIN BAL MANOVIGYAN"** submitted by me is original research work and has not been previously submitted for any other degree of this or any other University / Institution.

सुनील कुमार

(SUNIL KUMAR)
Name of the Scholar

Vir Bharat Talwar

(DR. VIR BHARAT TALWAR)
SUPERVISOR
Centre of Indian Languages,
School of Language, Literature
and Culture Studies
Jawaharlal Nehru University,
New Delhi-110067

M. Pandey

(PROF. MANAGER PANDEY)
CHAIRPERSON
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature
and Culture Studies
Jawaharlal Nehru University,
New Delhi-110067

GRAM : JAYENU TEL.: 6107676, 6167557TELEX : 031-73167 JNU IN FAX : 91-011-6865886

दादी
की
ममतामयी
स्मृतियों
को.....

कुछ अपनी

बाल साहित्य से मेरा जुड़ाव बचपन से ही रहा है। बचपन में बाल-पत्रिकाएँ नियमित पढ़ने का ही प्रभाव था कि हाई स्कूल तक आते-आते मैं बच्चों के लिए कुछ-कुछ लिखने लग गया था– बाद में अध्ययन के दौरान जब मैंने बाल साहित्य को ठीक से जाना और उसकी गंभीरता समझी गंभीरता समझी, तब मेरा इस ओर अत्यधिक झुकाव हुआ। गोरखपुर विश्वविद्यालय में एम० ए० करने के दौरान ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि आगे चलकर मुझे बाल साहित्य पर शोध करना है। इसके पीछे सबसे प्रमुख कारण था, हिन्दी में बाल साहित्य की घोर उपेक्षा। बाल साहित्य की ओर पर्याप्त ध्यान न दिए जाने के कारण ही अब तक यह साहित्य की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाया है। वही बाल साहित्य में शोध की स्थिति भी दयनीय है।

विश्व की लगभग सभी भाषाओं में बाल साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाता रहा है। संसार के जितने महान लेखक हैं, उनमें अधिकांश ने बच्चों के लिए खूब लिखा है। रूसी, जर्मन, चेक एवं पोलिश आदि भाषाओं में बाल साहित्य की एक सुदृढ़ परंपरा मिलती है। लियो टालस्टाय, मैक्सिम गोर्की, स्टीवेंसन, कारेल चापेक, लुइस कैरल, डैनियल डेफो आदि के लिखे हुए बाल साहित्य विश्व प्रसिद्ध हैं। भारत में हिन्दी को छोड़कर दूसरी भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य का गौरवशाली अतीत देखने को मिलता है। विशेषकर बांग्ला की स्थिति तो यह है कि वहाँ कोई लेखक तब तक बड़ा नहीं माना जाता, जब तक कि उसने बच्चों के लिए पर्याप्त साहित्य न लिखा हो। रवीन्द्रनाथ टेगौर, शरतचन्द, ताराशंकर, विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय आदि सभी शीर्षस्थ बांग्ला रचनाकारों ने श्रेष्ठ बाल साहित्य रचा है। यह जानकार आश्चर्य ही किया जा सकता है कि विश्व प्रसिद्ध फिल्मकार सत्यजित राय ने 'संदेश' नामक पत्रिका का बीस वर्षों तक संपादन किया था। वह कोई फिल्मी पत्रिका नहीं थी बच्चों की पत्रिका थी।

हिन्दी में बाल साहित्य लेखन को सदैव बचकाना काम माना गया है। यद्यपि श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने बच्चों के लिए अच्छा खासा लिखा है, लेकिन यह क्रम आगे नहीं बढ़ पाया, बीच-बीच में टूटता गया। कुल मिलाकर यदि कोई नजर आता है, तो वे प्रेमचंद हैं। प्रेमचंद ने देश के नौनिहालों के लिए साहित्य लिखकर स्वयं को विश्व के उत्कृष्ट रचनाकारों की कोटि में शामिल किया। यह प्रेमचंद की प्रगतिशीलता है कि उन्होंने बच्चों के लिए लिखना आवश्यक समझा। देश का एक महान् लेखक बालकों के लिए लिखता है, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी में प्रेमचंद के ऊपर काफी अधिक शोधकार्य हुए हैं, लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि उनके बाल साहित्य पर न ही आलोचकों ने कभी ध्यान दिया और न शोधार्थियों ने ही इसका सम्यक मूल्याकन

किया। ले-देकर'ईदगाह', 'गुल्ली डण्डा', 'कजाकी' 'चोरी' आदि को ही उनका बाल साहित्य मान लिया जाता है। यह किसी विडम्बना से कम नहीं है कि प्रेमचंद के बाल साहित्य के बारे पर एक भी पुस्तक नहीं मिलती।

दरअसल उसके पीछे मुख्य कारण यही है कि यहाँ के साहित्यिक मठाधीशों एवं आकाओं ने बाल साहित्य को कभी गंभीरता से नहीं लिया। प्रेमचंद के बाद भी कई रचनाकारों ने बच्चों के लिए छिटपुट लिखा है, लेकिन उसकी कितनी नोटिस ली जाती है? बच्चे किसी भी देश के भविष्य होते हैं। राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य के लिए बालकों का सर्वांगीण विकास आवश्यक है और बालकों के व्यक्तित्व-निर्माण में साहित्य की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। आज उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव ने सामान्य व्यक्ति का जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया है। इस अंधभौतिकता एवं बाजारवाद का सबसे अधिक दुष्प्रभाव बच्चों पर पड़ा है। पिछले कुछ वर्षों में टेलीविजन ने बच्चों के मानस पर सबसे अधिक कब्जा जमाया है। बुद्धूबक्से के उलजलूल कार्यक्रमों का नतीजा है कि असमय बच्चों का बचपन छीनता जा रहा है। बच्चों एवं उनके बचपन को बचाना बेहद जरूरी है। ऐसे में बच्चों के लिए उत्कृष्ट बाल साहित्य की आवश्यकता अपने-आप बढ़ गई है। अत: जरूरी है कि अब तक जो भी श्रेष्ठ बाल साहित्य लिखा गया है, उसको बाहर लाया जाय। इसी उद्देश्य के तहत मैंने प्रेमचंद के बाल साहित्य को अपने शोध का विषय बनाया है और इस पर मैंने बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करने का प्रयत्न किया है।

वस्तुत: इस विषय का चयन जुलाई, 1999 में हुआ था, जब जे० एन० यू० में प्रवेश के लिए मैं एम० फिल० का साक्षात्कार देने आया था। बाद में एक० फिल० द्वितीय सत्र में अपने शोध-निर्देशक की सहमति से मैंने इसे ही विषय के रूप में रख लिया।

यह लघु शोध प्रबन्ध दो अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में सैद्धान्तिक पक्ष की चर्चा है, जबकि दूसंरा अध्याय मूल विषय पर केन्द्रित है। पहले अध्याय में अध्ययन की सुविधा के लिए चार उप अध्यायो में विभक्त किया गया है। पहले उप अध्याय में मनोविज्ञान एवं उसके सामान्य सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त किया गया है। इसके अंतर्गत्त मैंने मनोविज्ञान के प्रमुख संप्रदायों एवं उनकी मान्यताओं पर संक्षिप्त दृष्टि डालने का प्रयत्न किया है। साहित्य और मनोविज्ञान के संबंध को समझने के लिए दूसरे उप अध्याय के अन्तर्गत्त इसका अध्ययन किया गया है। तीसरे उप अध्याय में साहित्य में मनोविज्ञान संबंधी प्रेमचंद की जो धारणाएँ हैं, उन पर मैंने चर्चा करने का प्रयास किया है। चौथे उप अध्याय में इस विषय के मर्म स्थल यानि बाल मनोविज्ञान की विशेषताओं को जाने समझने का प्रयास किया गया है।

लघु शोध प्रबंध के दूसरे अध्याय में मैंने प्रेमचंद की कहानियों में बाल मनोविज्ञान की पड़ताल करने का विनम्र प्रयास किया है। यही मेरे लघु शोध प्रबंध का मुख्य अभिप्रेत है। इस अध्याय में दो उप अध्याय हैं। पहले उप अध्याय में प्रेमचंद की उन कहानियों का अध्ययन हुआ है, जो उन्होंने शुद्ध रूप से बच्चों के लिए लिखी हैं अर्थात् जिन्हें हम बाल साहित्य का दर्जा दे सकते हैं। इसी कारण इस उप अध्याय के आरंभ से मैंने बाल साहित्य के बारे में थोड़ी सी चर्चा की है, ताकि प्रेमचंद की इन कहानियों का अध्ययन करते समय सुविधा हो। इस उप अध्याय में **'जंगल की कहानियाँ'** संकलन के अन्तर्गत्त संगृहीत कहानियों तथा दूसरी बाल कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रसंगवश का अन्य कहानियों की चर्चा की कहीं-कहीं करनी पड़ी है।

दूसरा उप अध्याय प्रेमचंद की उन कहानियों के लिए हैं, जिनमें पात्र के रूप में बच्चे चित्रित हुए हैं तथा जो बालकों को आधार बनकर लिखी गई हैं। आरंभ में मैंने इन प्रमुख कहानियों की चर्चा करने का प्रयास किया है, जो बालकों पर केन्द्रित हैं। इसके बाद वे कहानियाँ हैं, जिसमें प्रमुखता से बाल चरित्र रूपायित हुए हैं। प्रेमचंद की ढेरों कहानियों में बच्चों की उपस्थिति है। सभी की अलग-अलग चर्चा संभव भी नहीं है, क्योंकि लघु शोध प्रबंध की अपनी एक सीमा है। अत: मैंने चर्चा के अंत में गौण बाल पात्रों वाली कहानियों पर केवल एक नजर डालने की कोशिश की है। इस प्रयास में संभव है कोई कहानी छूट भी गई हो, जिसके लिए मुझे खेद है। बाल चरित्रों वाली प्रमुख कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत करते समय मैं विस्तार में चला गया हूँ। इसके पीछे मेरा लक्ष्य यही रहा है कि कहानियों में चित्रित बाल मनोविज्ञान का हर पहलू सामने आए। अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने दूसरे अध्याय के दोनों उपअध्यायों में तीन-चार कहानियों की संदर्भ-सूची एक साथ दी है। उपअध्याय के वृहद कलेवर को देखते हुए संदर्भ सूची सबसे अंत में देना मुझे मुनासिब नहीं लगा।

इस लघु शोध प्रबंध को मूर्त्त रूप देने में मेरे शोध निर्देशक डॉ० वीर भारत तलवार का स्नेह एवं सहयोग अत्यन्त सकारात्मक एवं उत्साहवर्द्धक रहा। शुरू-शुरू में उनकी अनुशासनप्रियता एवं काम के प्रति गंभीरता से मेरे विद्यार्थी मन को थोड़ी परेशानी होती थी। लेकिन आज सोचता हूँ तो लगता है कि वह सब केवल मेरी उन्नति एवं भलाई के लिए था। सर की यह अनुशासनप्रियता केवल विद्यार्थियों के हित के लिए ही है और हम इसे नहीं समझ पाते। इसी कारण आंरभ में वे जितने सख्त एवं कठोर लगते थे, अब उतने ही नरम, स्नेहिल एवं सहयोगी। शोध के अंतिम समय में सर ने जिस तरह से मेरे लघु शोध प्रबंध में व्यापक सुधार करके सहयोग किया, उसे मैं कभी नहीं भूला सकता। डॉ० तलवार स्वयं गंभीर शोधार्थी के रूप में हिन्दी साहित्य-जगत में प्रतिष्ठित

हैं। अपने शोध कार्य के दौरान मेरे मन में हमेशा यह बात जमी रही और मैं गहराई में जाकर चीज़ों को देखने-समझने हेतु प्रयत्नशील रहा।

यह मेरे शोध निर्देशक के स्नेह, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन का ही प्रतिफल है कि मैं अपना यह काम पूरा करने में सक्षम हो सका हूँ। मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ। इस क्रम में मैं श्रीमती तलवार के प्रति भी सम्मान प्रकट करता हूँ, जिन्होंने हमेशा मुझे वात्सल्यमयी स्नेह दिया और सदैव प्रोत्साहित-उत्साहित करती रहीं।

मैं अपने गुरुजनों प्रो० मैनेजर पाण्डेय, डॉ० पुरुषोत्तम अग्रवाल एवं डॉ० गोविन्द प्रसाद के प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे एम० फिल० में पढ़ाया और मेरे अन्दर साहित्य की समझ पैदा की। इनसे पढ़ने के बाद मेरा मन यहाँ से एम० ए० न कर पाने के लिए बार-बार कचोटता रहा। डॉ० ओमप्रकाश सिंह का सहयोग एवं स्नेह भी मेरे लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। मैं उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। इस क्रम में गोरखपुर विश्वविद्यालय के गुरुजनों डॉ० सदानन्द शाही एवं डॉ० अनिल राय के प्रति हृदय से आभारी हूँ, जिनका मित्रवत प्यार हमेशा मुझे मिलता रहा है। मैं प्रो० परमानंद श्रीवास्तव (सं०-आलोचना) के प्रति भी शुक्रगुजार हूँ, जिन्होंने शुरू में इस विषय की गंभीरता के प्रति मेरा ध्यान आकृष्ट कराया।

और अब मित्र....किससे शुरू करूँ? पहले बृजकिशोर गोयल की बात करूँ? जिसने मेरे काम को अपना काम समझा, अपने एम० फिल० साक्षात्कार की तैयारी के क्रम में अपना बहुमूल्य समय निकालकर लगातार मेरी मदद की। गोयल ने मेरे काम को आसान बनाकर मुझे तनाव से मुक्त रखा और एक सच्चे हितैषी की भूमिका निभाई। वास्तव में यदि गोयल न होता तो शोध के अंतिम अपनी अस्वस्थता के कारण मुझे भारी परेशानी का सामना करना पड़ता। साथी बीरपाल ने शुरू से मित्रता धर्म का पालन किया, दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से पुस्तकें दिलाने से लेकर उसने और भी सहयोग किया। अत्यंत निकट सुरेन्द्र को मैं कैसे भूल सकता हूँ जिसने हँसा-खेलाकर मुझे तनावमुक्त रखा और मेरे लिए लगातार मदद जुटाता रहा। सभी के सहयोग के लिए सदैव मदद करने को तत्पर पंकज ने अपने व्यस्त क्षणों में मुझे समय दिया। आत्मीय स्नेह देने वाले ललन सर लगातार मुझे उत्साहित करते रहे और मदद के लिए साथ रहे। प्रियवर अमित का सहयोग मेरे लिए हमेशा याद रखने योग्य है। मैं इन सब के प्रति हृदय से.....ना ना, इससे काम नहीं चलेगा। 'आभार' शब्द तो इनके स्नेह-सहयोग के सामने काफी छोटा है। वास्तव में, मैं इन मित्रों को अपने हृदय में धरोहर की तरह संजोकर रखना चाहता हूँ, ताकि हर समय इनके आत्मीयता की तरलता का शीतल एहसास करता रहूँ।

मेरे वरिष्ठ भरत जी ने **'मानसरोवर'** उपलब्ध कराकर मेरा काम आसान बनाया, वही साहित्य अकादमी में कार्यरत आत्मीय भाई देवेन्द्र कुमार देवेश का योगदान कहीं से कम नहीं है। मेरी मदद के लिए ये सदैव उपस्थित रहे और फोन पर भी सूचनाएँ उपलब्ध कराते रहें। दिल्ली विश्वविद्यालय के मित्रों सूरज प्रकाश एवं टेकचंद के प्रति मैं दिल से शुक्रगुजार हूँ, उन्होंने अपनी लाइब्रेरी से मेरे लिए पुस्तकें उपलब्ध करवाई। इस क्रम में राजेश भैया, दिनेश भैया एवं अंजय भैया को याद करना आवश्यक है। ये सब मेरे बड़े भाई की तरह हैं। इनसे मैंने काफी कुछ सीखा-समझा है और इनके स्नेह, प्रोत्साहन से मुझे सदैव ऊर्जा मिलती रही है। मैं हृदय से इन सबके प्रति आभारी हूँ।

लघु शोध प्रबंध लिखते समय दिल्ली के बाहर स्थित मेरे अपनों ने हमेशा मुझे उत्साहित किया घर से प्यारी छोटी बहन बेबी, सम्बलपुर से अमर तथा गोरखपुर से विनय एवं आरती के पत्रों ने मुझे भावनात्मक सहारा दिया। मैं इनके प्रति कैसे आभार प्रकट करूँ? गोरखपुर के मित्र मनोज (जिन्होंने पहली बार मुझे यह विषय मुझे सुझाया था) तथा रामेश्वर जी के सहयोग के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। प्यारे भाई शिवशंकर, अमितराजन एवं हिमांशु जी का सहयोग बेहद महत्त्वपूर्ण रहा। इसके अतिरिक्त कमलेश वर्मा, सागर, कुमार कौस्तुभ, विक्रम, कवितानन्दन एवं प्यारे विजय ने भी मेरी मदद की। मैं इन सबके प्रति दिल से आभारी हूँ।

शोध कार्य के दौरान मुझे जनेवि पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय (उत्तरी परिसर एवं दक्षिणी परिसर), साहित्य अकादमी पुस्तकालय तथा प्रेमचंद साहित्य संस्थान पुस्तकालय (गोरखपुर) से मुझे काफी सहयोग मिला। मैं इनके संचालकों को धन्यवाद देता हूँ।

अंत में, जया जी के सहयोग की चर्चा किए बगैर मैं उऋण नहीं हो पाऊँगा। वास्तव में यह जया जी की अँगुलियों का ही जादू था, जो इतने कम समय में टाइप का काम संभव हो पाया। मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ।

यह लघु शोध प्रबंध मैंने अपनी दादी को समर्पित किया है, जिनकी गोद में मैं खेला-कूदा और बचपन की अठखेलियाँ कीं। इसके साथ ही मैं अपने माता-पिता को भी सादर प्रणाम करता हूँ।

23-7-2001 **सुनील कुमार**

162, कावेरी छात्रावास
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-**110067**

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका (-i-v)

प्रथम अध्याय 1-30

साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध

उप अध्याय :

(1) *मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त*

(2) *साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध*

(3) *साहित्य में मनोविज्ञान संबंधी प्रेमचंद के विचार*

(4) *बालमनोविज्ञान की विशेषताएँ*

द्वितीय अध्याय 31-134

प्रेमचंद की कहानियों में बाल मनोविज्ञान

उप अध्याय :

(1) *बच्चों के लिए लिखी गई कहानियों में बाल मनोविज्ञान*

(2) *बच्चों के बारे में लिखी गई कहानियों में बाल मनोविज्ञान*

उपसंहार 135-139

ग्रन्थानुक्रमणिका 140-144

पहला अध्याय :

साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध

उप अध्याय :

(1) मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त

(2) साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध

(3) साहित्य में मनोविज्ञान संबंधी प्रेमचंद के विचार

(4) बालमनोविज्ञान की विशेषताएँ

मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त

Psychology' (मनोविज्ञान) शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द युग्म 'Psyche तथा 'logos; में मिलकर हुई है। इसका अर्थ क्रमशः **'आत्मा'** तथा **'ज्ञान'** अथवा **'विज्ञान'** होता है। इस प्रकार **'मनोविज्ञान'** का अर्थ हुआ, **'आत्मा का विज्ञान'** (scieche of soul). लेकिन **'आत्मा'** का कोई भौतिक अस्तित्व न होने के कारण यह परिणाम संदेह के घेरे में आ गई। फिर मनोविज्ञान को **'मन का विज्ञान'** (Scieche of mind) तथा **'चेतना का विज्ञान'** (Science of consciousness) कहा गया। आगे चलकर ये परिभाषाएँ भी खारिज कर दी गई।

आधुनिक समय में मनोविज्ञान को **'व्यवहार का विज्ञान'** (Science of Behaviour) माना जाता है। अब **"मनोविज्ञान के अन्तर्गत मन की विविध क्रियाओं तथा शक्तियों और मनुष्य के स्वभाव एवं कार्यों की मूल प्रवृत्तियों-प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता है.....मनोविज्ञान 'व्यवहार का वैज्ञानिक अनुसंधान' है।"**[1]

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन एवं चिंतन के आधार पर इसकी अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। जेम्स ड्रेवर का मत है–"मनोविज्ञान वह शुद्ध विज्ञान है, जो मानव और पशु के उस व्यवहार का अध्ययन करता है, जिसे हम मस्तिष्क कहते हैं।"[2]

सी० वुडवर्थ लिखते हैं– 'मनोविज्ञान वातावरण के अनुसार व्यक्ति के कार्यों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।'[3]

उपर्युक्त दोनों निष्कर्ष अपूर्ण लगते हैं। जेम्स ड्रेवर जहाँ केवल मस्तिष्क के व्यवहार को प्रमुखता देते हैं, वहीं वुडवर्थ वातावरण को ही व्यक्ति के कार्यों की प्रेरणा मानते हैं। जबकि मनुष्य अंतःप्रेरित भी होता है और उसके प्रभाव से कार्य करता है। एक, दूसरे मनोवैज्ञानिक चार्ल्स स्किनर की मान्यता कुछ अधिक तर्कसंगत लगती है। स्किनर का विचार है–

"मनोविज्ञान जीवन की विविध परिस्थितियों के प्रति प्राणी मात्र की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। प्रतिक्रियाओं तथा व्यवहार से तात्पर्य प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओं, समायोजन, कार्यों तथा अनुभवों से है।"[4]

स्पष्ट है कि मनोविज्ञान का विषय-क्षेत्र काफी व्यापक है। आज जीवन एवं समा ज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसे मनोविज्ञान की आवश्यकता नहीं हो। धर्म, कला, शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, उद्योग, अपराध आदि सभी के लिए मनोविज्ञान आवश्यक एवं उपयोगी साबित हो रहा है। आज इसकी कई शाखाएँ विकसित हो चुकी हैं। यथा-सामान्य मनोविज्ञान (General Psychology), असामान्य मनोविज्ञान या मनोविकृति शास्त्र (Abnormal Psychology) चिकित्सा

मनोविज्ञान (chinical psychology), शारीरिक मनोविज्ञान (Physioloical psychology) बाल मनोविज्ञान (child psychology), वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual Psychology), औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psycology), तुलनात्मक मनोविज्ञान (Comparative Psychology), समाज मनोविज्ञान (Social Psycology) आदि।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **'मनोविज्ञान व्यक्ति की ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक शक्तियों का अध्ययन प्रस्तुत करने वाला विज्ञान है।'**[2]

मनोविज्ञान पहले दर्शनशास्त्र का ही अंग था, लेकिन 20वीं शताब्दी में इसका स्वतंत्र अस्तित्व हो गया। मनोविज्ञान के अध्ययन ने मनुष्य के जीवन एवं उसके सम्पूर्ण वातावरण में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। अब तक स्थूल जगत् की ही बातें होती थीं और उन पर विचार-विमर्श करके संतुष्ट हो लिया जाता था, किन्तु मनोविज्ञान के कारण पहली बार मानव ने स्वयं अपने भीतर की सूक्ष्म गतिविधियों एवं संवेगों का हाल जाना। लेकिन यह केवल अपने-आप तक ही सीमित नहीं था, बल्कि यह विज्ञान दूसरों के अंत:जगत् की भी छानबीन करने लगा, मनोविज्ञान पर अब गंभीरतापूर्वक चिंतन आरंभ हो गया। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इस पर अलग-अलग ढंग से विचार किया और इससे मनोविज्ञान के कई सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इनमें मनोविश्लेषणवाद, गेस्यल्टनवाद, व्यवहारवाद, प्रवृत्तिवाद तथा वातावरणवाद आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं।

मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक सिगमाण्ड फ्रायड थे। यह सम्प्रदाय मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में एक क्रांति की तरह आया और लंबे समय तक बहस के केन्द्र में रहा। आज भी मनोविज्ञान की दुनिया में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारधारा है। मनोविश्लेषणवाद की चर्चा मैं बाद में करूँगा पहले अन्य सम्प्रदायों पर एक दृष्टि डालने का प्रयांस कर रहा हूँ।

गेस्टाल्टवाद

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार, संसार के प्रत्येक वस्तुजगत में 'समग्रता' की स्थिति होती है अर्थात्-यह मनोविज्ञान केवल मन में ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में 'संपूर्णता' देखता है।

गेस्टाल्टवाद के पुरस्कर्ता मैक्स बर्दाईमर कहते हैं कि किसी भी मानसिक क्रिया या घटना का समग्र (whole) रूप में अध्ययन करना चाहिए, न कि अंश (Parts) के रूप में। मैक्स का मत है कि मानसिक घटनाओं को अंश के रूप में अलग करना एक कृत्रिम प्रयास है, क्योंकि लोग सम्पूर्ण का प्रत्यक्षीकरण करते हैं, न कि अंश का। गेस्टाल्टवादी, खंडों के योग को समग्र न मानकर प्रत्येक खण्ड को ही सम्पूर्ण मानते हैं। इसका आशय यह है कि प्रत्येक अंश अपने-आप में पूर्ण है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। अत: किसी भी विषय पर अपना मत प्रकट करने से पूर्व

उसके संपूर्ण तत्वों पर विचार कर लेना आवश्यक होता है।

व्यवहारवाद

व्यवहारवाद के अनुसार, मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन ही मनोविज्ञान है। इस सम्प्रदाय ने चेतना को मनोविज्ञान की विषय-वस्तु मानने से इन्कार किया। व्यवहारवाद के जन्मदाता, अमरीकी मनोवैज्ञानिक जे० बी० वाटसन का मत था कि चेतना का अध्ययन वस्तुनिष्ठ रूप से संभव नहीं

इनका यह भी कहना था कि मनोविज्ञान की विषयवस्तु निरीक्षणीय (Observable) तथा मापनीय (Measurable) होनी चाहिए, जो चेतना द्वारा संभव नहीं। अत: व्यवहार ही मनोविज्ञान की सर्वोत्तम विषयवस्तु है। "व्यवहारवाद मानवीय मन के अस्तित्व को स्वीकार किए बिना ही अपनी गवेषणा में अग्रसर होता है, उसके अनुसार मनुष्य केवल शरीर है, वह उद्दीपकों की अनुक्रिया करता है, किंतु कोई संकल्पजनित कार्य नहीं।"[5]

प्रवृत्तिवाद

इस संप्रदाय का जन्म व्यवहारवाद के विरोध में हुआ। प्रवृत्तिवाद की मान्यता है कि मनुष्य के अन्दर कुछ मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं, जो मुख्य के कार्य-व्यवहार को संचालित करती है। "मनुष्य बुद्धि से प्रभावित नहीं होता, बल्कि मनुष्य के व्यवहार को प्रवर्तित करने वाली मौलिक अंत:प्रेरणाएँ निसर्गवृत्तियाँ ही हैं। बुद्धि तो सिर्फ उनके लक्ष्यों की पूर्ति के लिए एक उपकरण है। प्राणियों के विकास में इन प्रवृत्तियों का रूप कुछ बदल तो जाता है, लेकिन उनकी मूलवृत्ति वैसी ही बनी रहती है।"[6] प्रवृत्तिवाद के संस्थापक मैक्डोगल ने अपने लम्बे अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि मनुष्य के नैसर्गिक रूप से चौदह मूल प्रवृत्तियाँ रहती हैं। इन प्रवृत्तियों में तीनों प्रकार के अनुभव (ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक) रहते हैं। कुछ प्रमुख वृत्तियों में जीवनवृत्ति, साहचर्यवृत्ति, जिज्ञासा, संततिपालन, पलायन, विकर्षण, युयुत्सा, अहंवृत्ति, दैन्यवृत्ति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार, व्यक्ति और उसकी सहज वृत्तियों के अन्तर्संबंधों का उद्घाटन कर प्रवृत्तिवाद संप्रदाय ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वातारवरणवाद

'प्रवृत्तिवाद' ने जहाँ मनुष्य के अन्दर विद्यमान मूल प्रवृत्तियों की छानबीन करके उनकी भूमिका की व्याख्या की, 'वातावरणवाद' ने इसका खंडन किया। जानलाक नामक प्रसिद्ध दार्शनिक ने पहली बार यह मान्यता दी कि मनुष्य के अन्दर कोई जन्मजात प्रवृत्ति नहीं होती है और उसका समस्त कार्य-व्यवहार वातावरण से तय होता है। आशय यह है कि व्यक्ति का व्यवहार उसकी

मूलप्रवृत्तियों पर आधारित नहीं होता, बल्कि यह कैसे वातावरण में पलता-बढ़ता है–इससे उसका सम्पूर्ण व्यवहार तय होता है। वातावरणवादियों ने यह स्पष्ट किया है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से अच्छा या बुरा नहीं होता। यह सब इस पर निर्भर करता है कि वह कैसे परिवेश में रहता है। संसार के जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन्हें उपयुक्त वातावरण मिला, अपनी परिस्थितियों के साथ बेहतर सामंजस्य के कारण ही वे आगे और महान बने। मनोविज्ञान का यह सम्प्रदाय काफी फला-फूला और आज भी इसकी मान्यताएँ प्रासंगिक हैं।

मनोविश्लेषणवाद

'मनोविश्लेषण' का शाब्दिक अर्थ है, **'मन का विश्लेषण'** अर्थात्, मन के रहस्यों की छानबीन और उनका आकलन। वस्तुत: "मनोविश्लेषण एक विशेष युक्ति है। जिसके द्वारा अज्ञात मन के अन्दर स्थित द्वन्द्व एवं भावना-ग्रंथियों की जानकारी प्राप्त की जाती है।"[7] इसप्रकार, इस वाद का उद्‌भव मन:चिकित्सा के उद्देश्य से हुआ। आगे चलकर यह मनोविज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण संप्रदाय के रूप में स्थापित हुआ।

"मनोविश्लेषण में मानस की अचेतन शक्तियाँ समस्त मानवीय क्रिया-कलाप की मूल प्रवर्तक और नियंता है। मनुष्य अपनी संकल्पशक्ति से इतना संचान नहीं करता, प्रयत्युत वह ऐसी शक्तियों से संचालित होता है जिन पर उसका कोई वश नहीं, और जिनके व्यापार का उसे कोई ज्ञान नहीं।"[8]

मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक सिगमण्ड फ्रायड थे। उनकी स्थापनाओं ने बौद्धिकजगत में एक नवीन परिवर्तन किया। पहली बार फ्रायड ने यह मान्यता दी कि मनुष्य के मानसिक और शारीरिक कार्यकलापों के पीछे कोई प्रेरक शक्ति काम करती है। यह प्रेरक शक्ति व्यक्ति का अचेतन मन होता है। "मनोविश्लेषणवाद की सबसे बड़ी खोज अचेतन है। इससे पूर्व मनोविज्ञान को चेतन का विज्ञान माना जाता था। फ्रायड ने सर्वप्रथम इस सिद्धान्त की स्थापना की कि मनुष्य चेतन से ही नहीं अचेतन से भी प्रभावित होता है। उन्होंने अचेतन को मनोविश्लेषणवाद का आधारभूत तत्व माना है। इनका मत है कि बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता है..... इस आधार पर उन्होंने स्वप्नों, कल्पनाओं, विकृतियों, दैनिक भूलों आदि की तर्कपूर्ण व्याख्या की। व्यक्ति की इन सब क्रियाओं का प्रेरक उन्होंने अज्ञात मन को स्वीकार किया है।"[9]

फ्रायड ने मन के तीन भाग बताए–चेतन, अचेतन एवं अवचेतन। फ्रायड का यह मत था कि मानव मन का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा अज्ञात होता है। वह बर्फ के एक ऐसे चट्टान की तरह है, जिसका एक-चौथाई अंश की ऊपर होता है, शेष जल में निमग्न होता है, और यही शेष भाग मनुष्य के समस्त कार्य-व्यापारों को प्रभावित करता रहता है।

मानव के अचेतन में ढेर सारी स्मृतियाँ, इच्छाएँ, मानसिक उत्तेजनाएँ होती हैं, मानव के जो चेतन में आने के लिए उद्वेलित रहती हैं। चेतन और अचेतन के बीच का मन तीसरा स्तर अवचेतन होता है, जो दोनों के बीच की कड़ी के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अचेतन में स्थित अतृप्त एवं दमित आकांक्षाएँ चेतन में आने हेतु प्रयत्न करती रहती हैं, किन्तु अवेचतन के कारण से सफल नहीं हो पातीं और वापस लौटा दी जाती हैं। फिर, दमित होकर पुन: अचेतन का हिस्सा बन जाती हैं। आगे चलकर ये दमित भावनाएँ पुन: चेतन में आने हेतु प्रयास करती हैं।

फ्रायड के अनुसार, "दमन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है, जो मानव जीवन में क्रमबद्ध रूप से चला करती हैं, व्यक्ति के अचेतन में जन्मजात प्रवृत्तियाँ चेतन में आने के लिए जोर मारती हैं, परंतु बीच में अवचेतन मन उनको रोक देता है और यह दमित होकर पुन: अचेतन में चली जाती हैं। वस्तुत: दमन किसी भी विचार या भाव का हो सकता है, मूल प्रवृत्ति का नहीं। प्रवृत्ति हमेशा जीवित रहती है और समय-समय पर व्यक्ति के व्यवहारों को प्रेरित करती रहती हैं चेतना केवल उन्हीं विचारों को स्थान देता है जिसकी उस समय उसको आवश्यकता होती है।"[10]

अचेतन की उत्पत्ति दो स्रोतों से होती है। पहला स्रोत उन विचारों का है, जो आदिम हैं तथा जिनकी कभी चेतन में अनुभूति नहीं हुई अर्थात् ये संवेदनाएँ सदैव चेतन मन से अछूती रहीं। दूसरे स्रोत के रूप में वे भावनाएँ हैं, जो कभी चेतन का अंग थीं, लेकिन दमित होकर अचेतन में चली गयीं। इनका दमन इसलिए हुआ, क्योंकि ये इच्छाएँ अमर्यादित, अनैतिक एवं असामाजिक थीं और चेतन में रहकर कुप्रवृत्तियों को बढ़ावा देना चाहती थीं। उल्लेखनीय है कि दमित विचार और आकांक्षाएँ अचेतन में निष्क्रिय होकर स्थिर नहीं बैठतीं, बल्कि बार-बार विभिन्न तरीकों से आवेग के साथ, चेतन में प्रवेश करने की कोशिश करती रहती हैं। इसप्रकार, अचेतन कोई निष्क्रिय या सुप्त क्षेत्र नहीं, बल्कि अत्यधिक गतिशील और सक्रिय है।

मनोविश्लेषण की मान्यता है कि मनुष्य की ढेर सारी प्रेरणाओं एवं संवेगों का उत्स अचेतन ही होता है। "हमारी अपनी रूचियों, प्रवृत्तियों तथा आकांक्षाओं के आधार भी अधिकतर अचेतन में होते हैं। इसी प्रकार नापसंदगी की प्रेरणा भी अचेतन हो सकती है। इसके अलावा बातचीत में गलती करना, अप्रिय अनुभूतियों को भूल जाना तथा रोज़ाना की ज़िन्दगी के अन्य अनेक व्यापार भी अचेतन-प्रेरित होते हैं। भय और चिन्ताओं का मूल भी अचेतन होता है। हमारी बहुत-सी प्रेरणाएँ हमारे व्यवहार को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं, लेकिन हम स्वयं उन प्रेरणाओं के उत्स को नहीं जान पाते हैं। ऐसी अज्ञात सम्प्रेरणा को अचेतन सम्प्रेरणा (Motivation) कहा जाता है।"[11]

फ्रायड के मनोविश्लषण में, उसकी काम-संबंधी अवधारणा (libido) सर्वाधिक मौलिक एवं

क्रांतिकारी साबित हुई। फ्रायड ने पहली बार यह मान्यता दी कि व्यक्ति की समस्त क्रियाओं के मूल में मुख्य संचालक शक्ति **'काम'** (libido) होती है। यह काम शक्ति ही व्यक्ति के मानस जगत् का जीवन है। इसी पर उसका समस्त कार्य-व्यवहार आधारित है। इसके दमन से व्यक्ति मानसिक व्याधियों को शिकार बनता है, जबकि इसके उत्कर्ष से रचनात्मक कार्य होते हैं। फ्रायड का कहना है कि मानव में जन्म लेने के साथ ही 'काम' का स्फुरण होने लगता है। बच्चे के अँगूठा चूसने, माँ का स्तन पीने तथा मल-मूत्र त्याग करने तक में काम भावना होती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ इस भावना का परिष्कार होता जाता है और स्वरूप भी बदलता है। आगे चलकर व्यक्ति सामाजिक नीति-नियमों में बँध जाता है और उसी दायरे में अपनी यौन-भावनाओं को व्यक्त करता हैं।

'लिबिडो' के संबंध में फ्रायड लिखते हैं कि "उसमें उन समस्त अन्तर्वेगों का समावेश है जो व्यापक अर्थ में प्रेम से सम्बन्ध रखते हैं। यौनवर्ती प्रेम उसका प्रमुख उपादान है और यौन संयोग उसका लक्ष्य है, किन्तु आत्मप्रेम, माता-पिता और संतान के प्रति प्रेम, मित्रता, स्थूल वस्तुओं के साथ अनुराग-बंधन और यहाँ तक कि सूक्ष्म भावों में प्रगाढ़, अनुरक्ति का भी उसमें समावेश है।"[12]

इसप्रकार, मनुष्य की जन्मजात काम प्रवृत्तियाँ अपने सम्पूर्ण रूप में **'लिबिडो'** है। "लिबिडो का स्वाभाविक विकास व्यक्तित्व को स्वस्थ बनाता है और अस्वाभाविक विकास अस्वस्थ। लिबिडो की गति अबाध नहीं, प्रतिरोध से बाधित है।"[13]

फ्रायड की काम-संबंधी मान्यताओं ने दुनिया को मानव-जीवन के एक नये रहस्य से अवगत कराया। अपनी विवेचना के क्रम में फ्रायड ने आसक्तिग्रंथि की अवधारणा उद्घाटित की। फ्रायड के मतानुसार, दो साल की उम्र के बाद से ही बच्चों की कामशक्ति (libido) अपने माता-पिता की ओर केन्द्रित होने लगती है। बालक का झुकाव अपनी माता की ओर तथा बालिका का झुकाव अपने पिता की ओर होने लगता है। यही भावना, ग्रन्थि में बदल जाती है और बालक में मातृ शक्ति ग्रन्थि तथा बालिका में पितृशक्ति-ग्रन्थि का निर्माण हो जाता है। बालक का अपनी माता के प्रति आकर्षण **'इडिपस ग्रन्थि'** (Oedipus Complex) तथा बालिका का अपने पिता के प्रति आकर्षण **'इलेक्ट्रा ग्रन्थि'** (Electra Complex) कहलाता है।

चर्चा के इस क्रम में दो और महत्वपूर्ण मनोविज्ञानियों का उल्लेख करना बेहद जरूरी लग रहा है। ये मनोवैज्ञानिक हैं, एडलर एवं युंग। ये दोनों फ्रायड के शिष्य थे, किंत फ्रायड की मान्यताओं से इनका मतभेद हो गया। एडलर ने जहाँ **'वैयक्तिक मनोविज्ञान'** की स्थापना की, वहाँ युग की धारणाएँ **'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान'** के रूप में जानी जाती हैं।

वैयक्तिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत एडलर, फ्रायड की इस धारणा का खंडन करते हुए कि मनुष्य की मुख्य संचालक शक्ति 'कामं' है। एडलर आत्मसम्मान की भावना को मानव जीवन के

लिए मूल प्रेरक तत्व मानते हैं। उनका मत है कि "यह वृत्ति मनुष्य में जन्म के साथ ही उत्पन्न होती है। इसलिए जन्म के पश्चात्, जब शिशु अपने को दूसरों की अपेक्षा अक्षम पाता है तो उसमें हीनताग्रंथि बढ़ने लगती है। इस हीनता से मुक्ति पाने के लिए बालक आजन्म क्रियाशील रहता है।"[14]

एडलर लिखते हैं कि आंगिक हीनता, लोगों का अनुचित व्यवहार एवं विषम परिस्थितियों के कारण व्यक्ति में हीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। यदि इस हीनता से मुक्ति के लिए प्रयत्न किया जाए, तो व्यक्ति अनेक प्रकार की मानसिक व्याधियों का शिकार हो जाता है। अपनी हीनता से बचने के लिए व्यक्ति विविध कार्यों में स्वयं को संलग्न करता है। वह किसी और क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करके सफल होना चाहता है। हीनभावना की क्षतिपूर्ति का यह उपक्रम ही एडलर का '**क्षतिपूर्ति सिद्धान्त**' है। इसके अनुसार हीनताग्रन्थि को दूर किए बिना जीवन का स्वाभाविक विकास संभव नहीं। हीन भावना को दूर करने में सामाजिकता एवं प्रोत्साहन सबसे अधिक आवश्यक होते हैं। इसलिए एडलर '**सामाजिक समायोजन**' पर विशेष बल देते हैं।

फ्रायड की परंपरा में अगले मनोवैज्ञानिक कार्ल जीयुंग हुए, जिन्होंने विश्लेषक या विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान की स्थापना की। युंग भी अचेतन का अस्तित्व स्वीकारते हैं, किन्तु अचेतन के स्वरूप के सन्दर्भ में वे फ्रायड से थोड़े भिन्न नजर आते हैं। युंग का मानना हे कि अचेतन में केवल दमित आकांक्षाएँ ही नहीं रहतीं, बल्कि वे विचार और संवेदनाएँ भी रहती हैं, जो मनुष्य के दैनिक जीवन के व्यवहार में नहीं आ पातीं और विस्मृत होकर अचेतन में चली जाती हैं। युंग अचेतन के साथ चेतन मन का भी महत्त्व स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं, वे व्यक्तिगत अचेतन के साथ-साथ सामूहिक अचेतन की मान्यता स्थापित करते हैं। उनके अनुसार, व्यक्तिगत अचेतन, व्यक्ति के समग्र अचेतन का एक बाहरी भाग है। इसमें व्यक्ति की दमित वासानाएँ एवं प्रवृत्तियाँ निवास करती हैं। सामूहिक तथा प्रजातीय अचेतन का क्षेत्र व्यक्तिगत अचेतन से बड़ा होता है। इसमें व्यक्ति की सभी मूल प्रवृत्तियाँ रहती हैं। वस्तुतः "सामूहिक अचेतन, प्रजातीय दाय (Racial Heritage) का संग्रह या धरोहर है। उसमें प्रजाति (रेस) के सामूहिक विश्वास और मिथक संचित रहते हैं।"[15]

फ्रायड की आसक्ति ग्रंथि की अवधारणा से कार्ल युंग असहमत हैं फ्रायड इस आकर्षण को यौनवृत्ति से प्रेरित मानते हैं, लेकिन युंग का कहना है कि आसक्ति ग्रंथि के मूल में सुख, शक्ति और सुरक्षा का आग्रह है। बचपन में बालक हो या बालिका, दोनों के लिए माँ की भूमिका अनिवार्य है। अतः दोनों का प्रेमसाध्य माँ ही है, किन्तु यह प्रेम कामुकता पर आधारित नहीं होता।

मनोविश्लेषण धारा के अन्य मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड एडलर ने आसक्तिग्रंथि के मूल में हीनता की भावना का प्रधान माना है। एडलर का तर्क है कि हीनता की भावना के कारण पुत्र में पिता के

प्रति विरोध का भाव पैदा होता है और वह पिता के ही समान समर्थ बनना चाहता है और माँ पर अधिकार जताकर अपना पौरुष दिखलाना चाहता है। वस्तुत: एडलर ने इसे समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा है, समजाशास्त्रीय दृष्टि से देखा है, जबकि फ्रायड जीव-शास्त्रीय दृष्टि से इस पर विचार करते हैं। इसी कारण एडलर की अपेक्षा फ्रायड के मत अधिक मान्य हुए।

सिगमण्ड फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण में व्यक्तित्व की संरचना के अंतर्गत तीन प्रकार की मानसिक संस्थाओं की स्थापना दी है। इनकी उत्पत्ति ने **'लिविडो'** से मानते हैं। ये संस्थाएँ हैं–इदम् (Id), अहं (ego) एवं नैतिक विवेक या सुपरअहं (Super ego)। "व्यक्तित्व की यह तीन संस्थाएँ, मूल शक्ति के स्रोत लिबिडो से ही विकसित यथार्थ के संस्कारों में अनुकूलित सामाजिक एवं नैतिक मानदण्डों द्वारा परिमार्जित होकर कार्य करती है।''[16]

इदम् या इड–इड मन के अचेतन भाग में रहता है। यह सृजन तथा विनाश दोनों के लिए प्रेरणाशक्ति प्रदान करता है। मनुष्य की समस्त अच्छी बुरी आकांक्षाएँ अपनी तृप्ति के लिए यहाँ प्रयत्न करती हैं। इड केवल सुख के लिए नियम का पालन करता है और एकमात्र अपनी वासनात्मक इच्छाओं की पूर्ति में लगा रहता है। सामाजिक आदर्शों नैतिकता तथा मूल्यों से इसका कोई लेना-देना नहीं होता। मनुष्य की समस्त मूल प्रवृत्तियाँ, दमित भावनाएँ एवं प्रजातीय गुण इड में विद्यमान रहते हैं। "वह मानसिक शक्तियों का मूल स्रोत है, जिनका एकान्त लक्ष्य अबाध तोषण है .....इड के लिए अनुचित-उचित कुछ नहीं, क्योंकि वह निर्बुद्धि, निर्विवेक और निनैतिक होता है।''[17]

अहं या इगो–इदं का निवास जहाँ केवल अचेतन में है, वहीं अहं अचेतन, चेतन तथा अर्द्धचेतन, तीनों जगह सक्रिय रहता है। वस्तुत: यह इड का ही संशोधित एवं परिष्कृत रूप हैं। अहं तर्क, बुद्धि एवं संयम से युक्त है। यंह निरंतर जागरूक एवं क्रियाशील रहता है और इदं की अमर्यादित, अराजक एवं अनुचित भावनाओं पर रोक लगाता है। अहं ऐसी प्रवृत्तियों का दमन ही नहीं करता, बल्कि उन्हें बदलने और समाजोपयोगी बनाने की भी भूमिका अदा करता है। 'इगो' यथार्थपरक नियमों पर आधारित होता है। फ्रायड के अनुसार, "मानस में 'इगो' की स्थिति केन्द्रीय है। इड़, सुपरइगो और यथार्थ के साथ उसका संबंध है, और इन तीनों की माँगों की पूर्ति एक साथ करना, अथवा उनमें परस्पर सामंजस्य स्थापित करना उसका कार्य है।''[18] वह अंतर्जगत, बर्हिजगत और समाज में सामंजस्य स्थापित करने वाला मानसिक कारक है।''[19]

नैतिक विवेक या सुपरइगो–अहं की ही भाँति नैतिक मन या नैतिक विवेक अचेतन, अर्द्धचेतन (अवचेतन) तथा चेतन तीनों क्षेत्रों में कार्य करता है। "आदि स्रोत (इदम्) का जितना अंश यथार्थ के प्रकाश में आता जाता है, उतना अहम् शक्तिशाली होता जाता है। इसी अहम् से नैतिक मन का

विकास होता है। सामाजिक, सांस्कृतिक तथा वंश-परम्परागत मान्यताओं एवं मूल्यों द्वारा परिष्कृत तथा प्रशिक्षित अहम् का कुछ स्वरूप ही नैतिकमन (Super ego) कहलाता है।''[20] व्यक्ति के मन का यह भाग अंतरात्मा का पर्याय माना जाता है। अमर्यादित एवं अवांछित प्रवृत्तियों का दमन करने हेतु नैतिक विवेक, अहं को सदैव प्रेरित करता रहता है। "इस प्रकार, इदम्, अहम् तथा नैतिक मन क्रमशः शारीरिक, भौतिक और सांस्कृतिक रूप के अनुकूल होते हैं। व्यक्ति के मानसिक व्यापार का मूल्यांकन इन धारणाओं के कारण सुलभ हो जाता है।''[21]

फ्रायड की स्वप्न संबंधी अवधारणा मनोविज्ञान की उनकी एक अन्यतम देन है। इसके पूर्व स्वप्न को निरर्थक एवं अनर्गल माना जाता था। फ्रायड ने पहली बार स्वप्नों को सार्थक बताया। फ्रायड के अनुसार, स्वप्न व्यक्ति की दमित-कुण्ठित इच्छाओं एवं प्रवृत्तियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। इसकी भाषा संवेदनात्मक होती है। स्वप्न भले ही बेतरतीब लगें, किंतु, उनका एक निश्चित अर्थ होता है। मनोविश्लेषण, इसी अर्थ की खोज करता है। फ्रायड लिखते हैं–"स्वप्न यथार्थ होते हैं और स्वप्नों की व्याख्या संभव है।''[22] फ्रायड, स्वप्न को 'नींद का संरक्षक' मानते हैं। उनके अनुसार, "स्वप्न दो विरोधी प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप पैदा होते हैं, एक प्रवृत्ति नींद की अभिलाषा को चालू रखती है, दूसरी प्रवृत्ति किसी मानसिक उद्दीपन को तृप्त करने का यत्न करती है। स्वप्न मानसिक व्यापार हैं, और अर्थपूर्ण होते हैं। इनक दो विशेषताएँ हैं–एक, इच्छा-पूर्ति और दूसरी मतिभ्रमान्तक (Hallucinator) अनुभव।''[23]

कार्लयुंग, मन के समस्त क्रियाकलापों को उद्देश्यमूलक मानते हैं। युंग की मान्यता है कि स्वप्न अचेतन मन की दमित भावनाओं को प्रतीक रूप में प्रकाशन है। वे स्वप्न को केवल अतीत से ही नहीं जोड़ते, बल्कि वर्तमान और भविष्य का भी प्रतीकात्मक मार्ग दर्शक मानते हैं।

अल्फ्रेड एडलर ने अपने व्यष्टि. मनोविज्ञान में स्वप्न के बारे में विचार किया है। वे मानते हैं कि व्यक्ति में आत्मस्थापन की वृत्ति का अतृप्त होना, स्वप्न की उतपत्ति का कारण है। एडलर के मतानुसार, "स्वप्न अचेतन में वरिष्ठता प्राप्त करने का साधन है। जो श्रेष्ठता व्यक्ति को जाग्रतावस्था में नहीं मिल सकती है, उसे वह स्वप्न में पाना चाहता है। जीवन में आने वाली कठिनाइयों का पूर्वाभास स्वप्न में होता है जिससे व्यक्ति कठिनाई का सामना कर सके।''[24]

एडलर स्वप्न का संबंध जीवन-लक्ष्य से जोड़ते हैं और इस कारण वे इसे भविष्योन्मुख प्रतीक (संकेत) भी मानते हैं। स्पष्ट है कि स्वप्न अचेतन मन की प्रवृत्तियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। इस कारण यह जरूरी है कि स्वप्नों का सही विश्लेषण हो। वैज्ञानिक विश्लेषण के अभाव में इनके निश्चित अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती।

मनोविश्लेषणवादियों ने कला एवं साहित्य से संबंधित भी स्थापनाएँ दी हैं, जिसकी चर्चा में अगले उप-अध्याय में करूँगा। मनोविश्लेषण के अध्ययन से एक बात स्पष्ट है कि यह मानवीय पक्ष पर ही जोर देता है। उसके अनुसार, मनुष्य के समस्त कार्य-व्यापारों की मूल संचालक शक्ति उसके अचेतन में रहती है।

मनोविज्ञान के प्रमुख संप्रदायों से संक्षिप्त परिचय हो जाने के उपरांत, अंत में, निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि "समस्त मनोविज्ञान अंतिम रूप में मानवीय प्रक्रिया का अध्ययन है। इस अध्ययन का मानवीय व्यक्तित्व की धारणा के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य एक ठोस प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश में रहता है। वह एक साथ इस परिवेश की निर्मित्ति है और निर्माता भी। मनोविज्ञान का मन्तव्य तभी पूरा हो सकता है जब वह इन दोनों परस्पर विरोधी किन्तु अविच्छिन्न रूप में संबद्ध स्वरूपों का उद्‌घाटन करके मानवीय चरित्र की व्याख्या कर सके। इस कार्य में मानवीय पक्ष उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि बाह्यपक्ष। सच तो यह है कि इनमें से एक के बिना दूसरे की कल्पना ही नहीं की जा सकती।"[25]

संदर्भ सूची

1. गिरिधर प्रसाद शर्मा, हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्म अध्ययन, पृ० सं० 01
2. उद्धृत-मधुजैन, यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, पृ० सं० 18
3. उद्धृत–वही, पृ० सं० 18
4. निर्मला सारडा, बच्चन के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० सं० 2
5. वही, पृ० सं० 3
6. गंगाधर झा, आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य, पृ० सं० 21
7. निर्मला सारडा, बच्चन के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० सं० 146
8. गिरिधर प्रसाद शर्मा, हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ० सं० 01
9. गंगाधर झा, आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य, पृ० सं० 21
10. मधुजैन, यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, पृ० सं० 24
11. निर्मला सारडा, बच्चन के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० सं० 7-8
12. गिरिधर प्रसाद शर्मा, हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ० सं० 13
13. उद्धृत–सुषमा गर्ग, भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में मनोविज्ञान, पृ० सं० 13
14. वही, पृ० सं० 13
15. निर्मला सारडा, बच्चन के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० सं० 07
16. देवेन्द्रनाथ शर्मा, (पुरोवाक्), मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन, लेखक-क० अहमद, अनु०-देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ० सं० थ
17. उद्धृत-मधुजैन, यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, पृ० सं० 29
18. गंगाधर झा, आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य, पृ० सं० 70
19. वही, पृ० सं० 71
20. वही, पृ० सं० 71
21. गिरिधर प्रसाद शर्मा, हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ० सं० 15
22. निर्मला सारडा, बच्चन के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ० सं० 10
23. उद्धृत-गंगाधर झा, आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य, पृ० सं० 79
24. उद्धृत-गिरिधर प्रसाद शर्मा, हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ० सं० 30
25. वही, पृ० सं० 31
26. गंगाधर झा, आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य, पृ० सं० 84-85

साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध

साहित्य का समाज से सीधा संबंध है। कहा भी गया है कि **'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है'** तथा **'साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों की संचित प्रतिबिम्ब होता है।'** आशय यह है कि साहित्य में समाज और उसके कार्य-व्यापार चित्रित होते हैं। समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है, अत: व्यक्ति और उसका जीवन साहित्य के उपजीव्य हैं।

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। वह मनुष्य की प्रवृत्तियों, व्यवहार, अनुभूतियों एवं संवेदनाओं आदि समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ध्यान देने योग्य है कि मनोविज्ञान मनुष्य के अंतर्जगत् की ही छानबीन नहीं करता, बल्कि बाह्य वातावरण से मानव के सामंजस्य की भी पड़ताल करता है। साहित्य, इन्हीं सब मानसिक क्रिया-कलापों को कलात्मक अभिव्यक्ति देता है। "साहित्य यदि हमारी मानसिक प्रवृत्तियों, भावों, विचारों की सहज कलात्मक अभिव्यक्ति है तो उसके वैज्ञानिक विश्लेषण को **'मनोविज्ञान'** नाम से अभिहित किया जाएगा। इस प्रकार साहित्य और मनोविज्ञान की आधारभूत सामग्री एक है। मनोविज्ञान और साहित्य दोनों ही व्यक्ति को समझने की चेष्टा में लीन हैं। मनोविज्ञान का सीधा संबंध वास्तविक जीवन से है और साहित्य उस अनुभूत जीवन की सहज कलात्मक अभिव्यक्ति है।"[1]

साहित्य एवं मनोविज्ञान की बुनियादी सामग्री एक होने के बावजूद दोनों के उद्देश्य एवं कार्य-पद्धति में थोड़ा अन्तर है। लेकिन वस्तुगत स्तर पर समानता के कारण दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वस्तुत: मनोविज्ञान के आगमन ने साहित्य की दुनिया बदल दी। इसके पूर्व कला या साहित्य को ईश्वरीय देन समझा जाता था। मनुष्य के मानसिक कार्य-व्यापारों के परिप्रेक्ष्य में साहित्य को देखना-परखना तब कोरी कल्पना थी। मनोविज्ञान के आने के बाद कला-साहित्य की धारा परिवर्तित हुई और उसके केन्द्र में मनुष्य, समाज एवं उसके विविध क्रिया-कलाप आए। फिर, मनुष्य-चरित्र का बारीकीपूर्वक मूल्यांकन एवं चित्रण आरंभ हुआ।

मनोवैज्ञानिकों ने कला का मूल आधार व्यक्ति के अचेतन मन को माना है। फ्रायड की मान्यता है कि मानव के अचेतन मन में निरंतर उमड़ती-घुमड़ती संवेदनाएँ एवं दमित-कुंठित आकांक्षाएँ ही कलाकार की कल्पना का आधार बनती हैं। फ्रायड **'काम'** को जीवन के लिए मूलभूत प्रेरकतत्व मानते हैं और साहित्य को अतृप्त तथा दमित काम-आकांक्षाओं की परिणति। 'साहित्य अचेतन की दमित इच्छाओं का प्रतीकात्मक रूप है, जिसकी अभिव्यक्ति वास्तविक रूप से संभव नहीं होती। ये इच्छाएँ अधिकतर काम-सम्बन्धी होती हैं। साहित्य इन इच्छाओं की क्षतिपूर्ति है, जो

वास्तविक न होकर काल्पनिक ढंग से होती है।''[2] फ्रायड कला को व्यक्ति के अचेतन में दमित भावनाओं का परिणाम मानते हैं, लेकिन यह भी स्पष्ट करते है कि इन भावनाओं की अभिव्यक्ति जस-की-तस नहीं हो जाती, बल्कि रचनाकार उन्हें उदातिकृत रूप में सामने लाता है। इस प्रकार कला दमित-कुण्ठित वासनाओं की उदात्तिकृत अभिव्यक्ति है।

फ्रायड के बाद एडलर भी कला को अचेतन मन से जोड़ते हैं। लेकिन वे दमित कामवासना की जगह 'हीनताबोध की क्षतिपूर्ति' के रूप में कला को व्याख्यायित करते हैं। वे कला-सृजन के मूल में 'कायिकदोष' को मानते हैं। एडलर का विचार है कि शारीरिक अक्षमताओं तथा अन्य कारणों से जब व्यक्ति वांछित कार्य नहीं कर पाता तो उसकी भरपाई के लिए वह दूसरे क्षेत्रों में उपलब्धि हासिल करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहता है। कला या साहित्य इसी हीनता-भाव की क्षतिपूर्ति का साधन हैं

तीसरे मनोवैज्ञानिक युंग हैं। इन्हांने फ्रायड की काम-भावना तथा एडलर की हीनताग्रंथि की क्षतिपूर्ति संबंधी अवधारणाओं का खंडन करते हुए इन्हें साहित्य-सृजन का मूल कारण मानने से इंकार किया है। युंग व्यक्तिगत अचेतन से आगे जाकर एक सामूहिक अचेतन की स्थापना देते हैं और इसे ही कला हेतु प्रेरक-तत्व मानते हैं। युंग के अनुसार, व्यक्तिगत अचेतन, सम्पूर्ण अचेतन का एक बाहरी भाग है। इसमें व्यक्ति की कुण्ठित इच्छाएँ एवं प्रवृत्तियाँ रहती हैं; जबकि सामूहिक अचेतन आनुवांशिक है और इसमें व्यक्ति की समस्त मूल प्रवृत्तियाँ रहती हैं। सामूहिक अचेतन व्यक्तिगत अचेतन के नीचे होता है। युंग कला या साहित्य की रचना हेतु सामूहिक अचेतन की सत्ता को ही महत्व देते हैं। हालाँकि कलाकार का अनुभव व्यक्तिगत ही होता है, लेकिन उसकी रचना जातीय गुणों को उजागर करती हैं। युंग अचेतन के साथ-साथ चेतन को भी कला के लिए आवश्यक मानते हैं। उनका यह मत काफी सही प्रतीत होता है कि साहित्य-सृजन का मूल आधार अचेतन मन है, लेकिन चेतन मन से भी कला सृजित होती है।

इन विवेचनों से यह स्पष्ट है कि कला और मनोविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है और सभी मनोवैज्ञानिक इस बारे में एक मत हैं, यद्यपि उनकी मान्यताओं में परस्पर भिन्नता है।

भारतीय साहित्य-चिन्तकों ने भी साहित्य एवं मनोविज्ञान के संबंध पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान का विधिवत आगमन प्रेमचंद के साथ हुआ। इस संदर्भ में उनकी मान्यताओं की चर्चा मैं अगले उप अध्याय में करूँगा, यहाँ दूसरे विचारकों के मत प्रस्तुत हैं।

प्रेमचंद की परंपरा के श्रेष्ठ कहानीकार जैनेन्द्र कुमार मनोविश्लेषणवाद से काफी प्रभावित थे। इस शृंखला में इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय आदि रचनाकारों का नाम भी उल्लेखनीय

है। साहित्य में मनोविज्ञान की भूमिका पर विचार करते हुए जैनेन्द्र जी लिखते हैं– "हमारे अन्दर अनन्त अव्यक्त है। मैला उसमें है, धौल उसमें है। उन सबको स्वीकार कर शनैः-शनैः उसे बाहर निकालकर अपने को रिक्त करते जाना-मेरे ख्याल में यह बड़ा काम है। इससे अलग सृजन क्या होगा, वह मैं जानता नहीं।"[3] स्पष्टतः यहाँ जैनेन्द्र फ्रायड की राह पर हैं और अंतस्तल में स्थित भावनाओं को बाहर लाकर प्रकाशित करने को सृजन की संज्ञा देते हैं–"साहित्य का पहला श्रेय है जीवन का लाभ अपनी अंतरंगता की स्वीकृति और प्राप्ति, अपने भीतर के विग्रह की शान्ति, उलझन की समाप्ति और व्यक्तित्व की उत्तरोत्तर एकत्रितता।"[4]

जैनेन्द्र कुमार एडलर से भी प्रभावित लगते हैं और क्षतिपूर्ति संबंधी अवधारणा का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार, हीनता की भावना और असमर्थता बोध से मुक्ति के लिए व्यक्ति सृजन की ओर मुड़ता है।

इलाचन्द्र जोशी भी रचनाकार की सृजनधर्मिता को कुण्ठित-दमित भावनाओं से जोड़कर देखते हैं। वे फ्रायड की मान्यताओं से प्रभावित हैं– "कवि अथवा कलाकार की कृतियाँ उसके अन्तस्तल में दबी हुई भावनाओं की ही प्रतीक होती हैं।"[4] कला एवं मनोविज्ञान के संबंध में प्रमुख मनोवैज्ञानिक रचनाकार अज्ञेय, एडलर की मान्यताओं का पक्ष लेते हैं–"कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न, अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह है।"[5]

भगवतीचरण वर्मा के लेखन पर भी मनोविज्ञान का प्रभाव रहा है। वे फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से विशेष प्रभावित हैं। वर्मा जी भी रचना-प्रक्रिया का संबंध अचेतन से मानते हैं। इसके साथ-साथ वे युंग की धारणाओं का भी समर्थन करते हैं और कला को प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। "कला का स्रोत न भावना में है न बुद्धि में है। कला एक प्रवृत्ति है, और प्रत्येक प्रवृत्ति का स्रोत मनुष्य की अन्तःप्रेरणा को नियमों में नहीं बाँधा जा सकता। यह एक रहस्य की भाँति हरेक मनुष्य के अन्दर स्थित है, इसकी मनुष्य के जीवन में एक महत्वपूर्ण सत्ता है। इस अन्तःप्रेरणा को हम कर्म अथवा सृजन की प्रक्रिया कह सकते हैं।"[6]

उपर्युक्त सभी रचनाकारों के विचारों से साफ जाहिर है कि साहित्य-सृजन मानसिक कार्य-व्यापार है और मनोविज्ञान का इसमें सर्वाधिक योगदान रहता है। ये सभी रचनाकार फ्रायड के मनोविश्लेषण से काफी प्रभावित रहे। इनकी रचनाओं में यह प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। वस्तुतः फ्रायड के सिद्धांतों ने ज्ञान-विज्ञान एवं कला-साहित्य की दुनिया में क्रांति ला दी। इन सभी क्षेत्रों में क्षितिज के नये द्वार खुले। विशेष रूप से सृजन-संसार में अनेक परिवर्तन घटित हुआ। "1920 ई० के लगभग मनोविश्लेषण ने यूरोपीय साहित्य को उसी प्रकार प्रभावित किया आरम्भ किया, जिस

प्रकार मार्क्सवाद ने 1930 ई० के बाद। यूरोप में लिखे गये ऐसे ग्रन्थों की सूची काफी लम्बी है, जो मनोविश्लेषण से प्रभावित है।''[6] मनोविश्लेषण का ही प्रभाव था कि साहित्य में प्रतीक, बिम्ब, भाषा, शैली आदि सभी में नवीनता का संचार हुआ। उल्लेखनीय हे कि साहित्य में 'अतियथार्थवाद' का उद्‌भव 'अचेतन सिद्धांत' से प्रेरित होकर हुआ।

साहित्य पर मनोविश्लेषण के प्रभाव की चर्चा करते हुए आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा लिखते हैं कि "आधुनिक साहित्यिक मनोविश्लेषण की अन्यतम महत्वपूर्ण देन यह है कि उसने मानव-व्यवहार का और उसके आधारभूत उद्देश्यों के उद्‌घाटन और परीक्षण का अवसर दिया। इससे उपन्यास, नाटक और कविता के विषय में ही नहीं, चरित्र-चित्रण में भी अधिक सूक्ष्मता और समृद्धि आयी।''[7] मनोविश्लेषण से साहित्यिक आलोचना को भी एक नई दिशा मिली। इसकी सहायता से किसी रचना के पीछे की उन अज्ञात प्रेरणा शक्तियों और मानसिक प्रवृत्तियों का आकलन किया जाने लगा, जिसके कारण रचनाकार सृजन के लिए प्रवृत्त हुआ हो।

मनोवैज्ञानिक समीक्षक डॉ० देवराज उपाध्याय का कहना है कि "साहित्य की आलोचना की दृष्टि से मनोविश्लेषण का सबसे बड़ा महत्व यह है कि इसने मनुष्य की उन मूल प्रवृत्तियों के स्वरूप को समझने-समझाने का प्रयत्न किया है जो युग-युग में महान साहित्यकारों को प्रेरित करती रही है।''[8] आलोचना के सन्दर्भ में मनोविज्ञान की भूमिका पर थोड़ी गहनता से विचार करते हुए डॉ० उपाध्याय आगे लिखते हैं कि–"यदि उपन्यासकार या कवि की जीवनी के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञात न हो तो आलोचना मनोविज्ञान की किरणों के सहारे रचनाओं के आधार पर उसकी जीवनी का निर्माण भी कर सकती है।''[9]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-पद्धति में हमें मनोविज्ञान की झलक मिलती है। शुक्ल जी का स्पष्ट मानना था कि मनुष्य को कर्म की ओर प्रेरित करने में प्रवृत्तियाँ और भाव बुनियादी तत्व हैं, यद्यपि वे ज्ञान का महत्त्व स्वीकार करते हैं, क्योंकि ज्ञान के बिना भावों का विकास संदिग्ध होता है। आचार्य शुक्ल ने भावों और मनोविकारों की प्रक्रिया का गहन अध्ययन किया। शुक्ल जी ने निबन्धों में उनके मनोवैज्ञानिक स्वरूप को बखूबी देखा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक और रचनाकार दोनों का कार्य मानव-प्रकृति का अध्ययन करना है। मनोविज्ञान के ऐसे कई पक्ष हैं, जिनसे सृजनकर्मी अपने लिए महत्वपूर्ण सामग्रियाँ ग्रहण करता है। बिम्ब, प्रतीक, कल्पना, शैली आदि सभी में मनोविज्ञान का योगदान रहता है। यहाँ तक कि भाषा भी मनोविज्ञान से प्रभावित होती है। पात्र विशेष का चित्रण करते समय उसकी प्रकृति एवं चरित्र के अनुरूप ही भाषा अपेक्षित होती है। पात्रोनुकूल भाषा के अभाव में रचना में संप्रेषणीयता एवं

जीवंतता ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी।

मनुष्य का बाह्य-संसार जितना विस्कृत एवं वैविध्यपूर्ण है, अंतर्जगत् उससे तनिक भी कम व्यापक नहीं। मनोविज्ञान से रचनाकार को मनुष्य के जीवन के इन दोनों पक्षों को देखने-समझने की एक सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक दृष्टि मिलती है। इसी प्रकार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अलग तो है ही, स्वयं प्रत्येक मनुष्य की अपनी चेतना के कई स्तर होते हैं और उनमें परस्पर भिन्नताएँ भी होती हैं। एक रचनाकार के लिए किसी मनुष्य को समझना कितना कठिन होगा, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि रचनाकार मानव-चरित्र का अध्ययन तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही व्यक्ति का अपने बाह्य वातावरण एवं विविध परिस्थितियों से तादात्म्य की भी गहन छानबीन करता है। फिर वह उन्हें सृजित करके रचना का स्वरूप प्रदान करता है। जाहिर है, मनोविज्ञान की सहायता के बिना यह सब संभव नहीं हैं। मनोविज्ञान को साथ लेकर ही रचनाकार अपना सृजन-कार्य सम्पादित कर सकता है।

हिन्दी साहित्य में छायावाद का मूल स्वर 'आत्माभिव्यक्ति' रहा है। इसमें संवेदना एवं अनुभूति की मुख्य भूमिका होती है। यह सब रचनाकार की स्वतंत्रता एवं अन्तर्मुखता से होता है। रचनाकार बाह्य दृश्यों से प्रभावित जरूर होता है, उससे प्रेरणा सामग्री भी लेता है, लेकिन जब वह सृजन-कर्म में रत होता है, तो उसकी अपनी संवेदना बड़ी भूमिका निभाती है। स्वच्छन्दतावादी कवियों के लिए भी अनुभूति, कल्पना एवं प्रेरणा मुख्य उपादान रहे हैं। कहना न होगा कि इन सारे प्रत्ययों का मनोविज्ञान से सीधा संबंध है। मनोविज्ञान इनके साथ घुला-मिला है। यह रचनाकर्मी को दृष्टि भी देता है और सृजन-प्रक्रिया को सरल, व्यावहारिक एवं प्रामाणिक भी बनाता है। साहित्य और मनोविज्ञान के संबंधों पर गंगाधर झा ने अपनी पुस्तक '**आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य**' में सविस्तार विवेचना की है। उनका मानना है कि मनोविज्ञान और साहित्य का सम्बन्ध स्पष्टत: दो भूमिकाओं पर है। एक तो, साहित्य के विविध पक्षों का विचार करने के लिए मनोविज्ञान से विभिन्न विधियाँ प्राप्त होती हैं, जो समीक्षकों के लिए उपयोगी हैं, दूसरे, मनुष्य के चरित्र और मूल व्यक्तित्व के बारे में एक नयी अन्त:दृष्टि प्राप्त होती है, जिसका उपयोग सृजनशील कलाकार कर सकते हैं। कवि यदि अपनी रचना-प्रक्रिया और काव्य-लक्ष्य का विश्लेषण करने का इच्छुक है, तो उसके इस कार्य में भी ये विधियाँ और निष्पत्तियाँ सहायक हो सकती हैं।'' [10]

इस प्रकार आज के इस जटिल समय में, जब मनोविज्ञान का प्रवेश जीवन के हर क्षेत्र में हो चुका है; साहित्य के लिए यह एक अनिवार्य तत्व है। नि:सन्देह मनोविज्ञान आधुनिक साहित्य की आधारभूमि है।

साहित्य में मनोविज्ञान संबंधी प्रेमचंद के विचार

साहित्य में मनोविज्ञान संबंधी प्रेमचंद के विचार

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचंद का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वस्तुतः प्रेमचंद ने ही कथा साहित्य को उसका सही अर्थ प्रदान किया। प्रेमचंद से पूर्व का कथा साहित्य तिलस्मी-ऐय्यारी, जासूसी, रोमानी और कौतूहल भरे संसार में विचरण कराने वाला था। आम जनता के जीवन और उनकी समस्याओं से उसका कोई सरोकार नहीं था। प्रेमचंद के आगमन से पहली बार यह धारा परिवर्तित हुई और उसका रूख व्यक्ति एवं समाज की ओर मुड़ा। यह परिवर्तन कथ्य एवं शिल्प दोनों स्तरों पर घटित हुआ। साहित्य की सोद्देश्यता की बात सर्वप्रथम प्रेमचंद ने ही उठाई। सन् 1936 ई० में **'प्रगतिशील लेखक संघ'** के प्रथम अधिवेशन (लखनऊ) में **'साहित्य का उद्देश्य'** नामक अपने भाषण को पढ़ते हुए प्रेमचंद ने साहित्य के कुछ मानदंडों की चर्चा की। आगे चलकर उनका यह भाषण हिन्दी साहित्य के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

साहित्य और मनोविज्ञान के संबंध को लेकर प्रेमचंद का सोच बिल्कुल स्पष्ट था। वे साहित्य के लिए मनोविज्ञान को आवश्यक मानते थे। अपने कई निबन्धों में उन्होंने इस बात को प्रमुखता से स्थापित किया है। प्रेमचंद उसी को साहित्य मानते हैं, जिसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों। इसी कारण वे साहित्य की परिभाषा देते हैं–"मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है।"[1] जीवन को समझना इतना आसान नहीं। इसके लिए पहले व्यक्ति को समझना होगा और यह काम मनोविज्ञान की सहायता के बिना नहीं हो सकता। अकारण नहीं कि प्रेमचंद अनुभूति की तीव्रता पर बार-बार जोर देते हैं–"साहित्यकाार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दर्जे की होती है।"[2] स्पष्ट है कि रचनाकार की अनुभूति तीव्र होगी, तब वह पाठक के विचारों और अनुभूतियों को जगा सकेगा। प्रेमचंद इसे ही साहित्य की कसौटी मानते हैं। भावों और अनुभूतियों की बात करके वस्तुतः वे साहित्य में मनोविज्ञान के महत्व को स्थापित करते हैं। प्रेमंचद लिखते हैं कि "हर आदमी की मनोवृत्ति और दृष्टिकोण अलग है। रचना कौशल इसी में है कि लेखक जिस मनोवृत्ति या दृष्टिकोण से किसी बात को देखे, पाठक भी उसमें उससे सहमत हो जाय। यही उसकी सफलता है।"[3]

समाज का निर्माण व्यक्तियों से मिलकर होता है। जिस काल में लोगों की मनोवृत्तियाँ जैसी होती हैं, समाज की प्रकृति एवं प्रवृत्ति भी वैसी ही बनती है। साहित्य स्रष्टा के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति की मनोवृत्तियों का गहराई से अध्ययन करे। तभी समाज को समझना उसके लिए संभव हो पाएगा और युगानुरूप साहित्य की रचना भी। प्रेमचंद ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है

कि "साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता हैं। जो भाव और विचार लोगों के दृश्यों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं।"[4] जाहिर है व्यक्ति एवं समाज के लिए साहित्य एक बड़ी आवश्यकता है। व्यक्ति को अपने चरित्र-निर्माण एवं आत्मविकास के लिए अच्छे विचारों को साथ लेकर चलना आवश्यक होता है। यह कार्य साहित्य की सहायता के बिना संभव नहीं–"साहित्य ही मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है।"[5] प्रेमचंद इसका कारण भी बताते हैं–"साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी मार ले जाता है।"[6]

ध्यान देने योग्य बात है कि साहित्य हृदय की वस्तु तभी बन पाएगा, जब वह मनोविज्ञान की यात्रा तय करे, मानव-मन की गहराइयों में उतरे और बारीकी से समस्त तंतुओं को देखे-समझे। अत: यहाँ प्रेमचंद का मंतव्य स्पष्ट है। अपने **'कहानी-कला'** निबन्धों में उन्होंने साहित्य और मनोविज्ञान के अंतरसंबंधों पर सविस्तार चिंतन किया है। उनकी बेबाक टिप्पणी है कि–"सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"[7] इसे व्याख्यायित करते हुए प्रेमचंद आगे लिखते हैं–"साधुपिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा मैं दु:खी होना मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस आवेग में पिता के मनोवेगों को चित्रित करना और तदनुकूल उसके व्यवहारों को प्रदर्शित करना कहानी को आकर्षक बना सकता है। बुरा आदमी भी बिल्कुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं देवता अवश्य छिपा होता है–यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस देवता को खोलकर दिखा देना सफल आख्यायिका लेखक का काम है।"[8]

स्पष्टत: यहाँ प्रेमचंद, साहित्य में मनोविज्ञान की उपयोगिता को उजागर करते हैं। साथ ही रचना के लिए यह मानदण्ड भी तय करते हैं कि वह किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की बुनियाद पर खड़ी हो। कथा-साहित्य के संदर्भ में चर्चा करते हुए वे साफ शब्दों में घोषणा करते हैं कि "उपन्यासों में पात्रों का केवल बाध्य रूप देखकर हम संतुष्ट नहीं होते। हम उनके मनोगत भावों तक पहुँचना चाहते हैं और जो लेखक मानवी हृदय के रहस्यों को खोलने में सफल होता है, उसी की रचना सफल समझी जाती है.....अतएव मानसिक द्वन्द्व वर्तमान उपन्यास या गल्प का खास अंग है।"[9]

प्रेमंचद के समकालीन, कथा साहित्य के जो दूसरे रचनकार थे (जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा आदि), उन्होंने भी मनोविज्ञान को अपनी साहित्य रचना की आधारभूमि बनाया। परिणामत: कई श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक उपन्यास एवं कहानियाँ सामने आईं। प्रेमचंद के उपन्यासों एवं कहानियों में हमें मनोविज्ञान की गहरी पैठ देखने को मिलती हैं। अपने समकालीन

साहित्य के बारे में विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि "वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोविज्ञान है। घटनाएँ और पात्र तो उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लाये जाते हैं। उनका स्थान बिल्कुल गौण है। उदाहरण: मेरी '**सुजान भगत**', '**मुक्तिमार्ग**', '**शतरंज के खिलाड़ी**' और '**महातीर्थ**' नामक सभी कहानियों में एक-न-एक मनोवैज्ञानिक रहस्य को खोलने की चेष्टा की गई है।''[10] O,152,3,M80:9(S:1) 152 P1 DISS

इन कहानियों को पढ़ने से प्रेमचंद का मंतव्य और स्पष्ट हो जाता है। साथ ही यह भी पता चलता है कि रचना में मनोविज्ञान के समावेश के कारण ही वह वास्तविक तथा आत्मीय लगती है। इस प्रकार यह अकारण नहीं लगता कि इन्द्रनाथ मदान को एक प्रश्न के उत्तर में लिखे गए पत्र में प्रेमचंद ने कहा है कि–'मेरे लिए जरूरी है कि मेरी कहानी का कोई मनोवैज्ञानिक आधार हो।'[11] प्रेमचंद इतिहास, विज्ञान एवं दर्शन की अपेक्षा साहित्य को अधिक कालजयी मानते हैं, क्योंकि साहित्य का संबंध मनोभावों से होता है। आशय यह कि मनोविज्ञान को साथ लेकर चलने वाला साहित्य ही व्यक्ति एवं समाज को बेहतर ढंग से समझ सकता है। इसलिए वह चिरंजीवी होता है। प्रेमचंद ऐसे ही साहित्य को 'सच्चा साहित्य' की संज्ञा देते हैं।

इस क्रम में प्रेमचंद के कुछ और निबंधों की चर्चा करना आवश्यक लग रहा है। '**साहित्य और मनोविज्ञान**' निबंध में उन्होंने इस मुद्दे पर खुलकर विचार किया है। वे साहित्य में मनोविज्ञान की भूमिका पर तो चर्चा करते ही हैं, उसकी उपयोगिता भी बताते हैं। ज्ञान-विज्ञान के दूसरे विषयों से साहित्य की तुलना करते हुए प्रेमचंद ने साहित्य को व्यक्ति एवं समाज के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण माना है, क्योंकि इसका संबंध मनोविज्ञान से है। नीतिशास्त्र और साहित्य की स्थिति पर विचार करते हुए वे लिखते हैं कि–"नीतिशास्त्र का माध्यम तर्क और उपदेश है। वह युक्तियों और प्रमाणों से बुद्धि और विचार को प्रभावित करने की चेष्टा करता है। साहित्य ने अपने लिए मनो-भावनाओं का क्षेत्र चुन लिया है। वह उन्हीं तत्वों को रागात्मक व्यंजना के द्वारा हमारे अंतस्थल तक पहुँचाता है। उसका काम हमारी सुन्दर भावनाओं को जगाकर उनमें क्रियात्मक शक्ति की प्रेरणा करना है। नीतिशास्त्री बहुत से प्रमाण देकर हमसे कहता है, ऐसा करो, नहीं तो तुम्हें पछताना पड़ेगा। कलाकार उसी प्रसंग को इस तरह हमारे सामने उपस्थिति करता है कि उससे हमार निजत्व हो जाता है और वह हमारे आनन्द का विषय बन जाता है।''[12]

प्रेमचंद अपने '**उपन्यास**' शीर्षक निबन्ध में उपन्यासों की संरचना एवं उसके विविध पक्षों की चर्चा करते हैं। यहाँ भी उन्होंने मनोविज्ञान के विषय को प्रमुखता से रखा है–"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को

TH-9282
Jawaharlal Nehru University Library

खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।''[13] इसके लिए वे लेखकों को भी सलाह देते हैं–हमारा चरित्राध्ययन जितना ही सूक्ष्म, जितना ही विस्तृत होगा, उतनी ही सरलता से हम चरित्रों का चित्रण कर सकेंगे।''[14]

उपर्युक्त दोनों युक्तियों में अत्यन्त व्यापक एवं गूढ़ अर्थ सन्निहित है। ध्यातव्य है कि मानव-चरित्रों के रहस्यों को सुलझाने के लिए मनोविज्ञान को माध्यम बनाना पड़ेगा और इसके बिना कोई उपन्यास कम-से-कम अनुभूति एवं संवेदना के स्तर पर प्रामाणिक नहीं हो सकता। कहना न होगा कि प्रेमचंद उपन्यास लेखकों को बार-बार यह समझाने की कोशिश करते हैं कि सच्चे साहित्य की रचना के लिए पहले मनोविज्ञान को समझना आवश्यक है। इसके बिना मानव-चरित्र की संवेदनाओं, भावनाओं एवं मनोवृत्तियों को पकड़ना या आत्मसात् कर पाना संभव नहीं।

कहानीकार एवं आलोचक महेश दर्पण प्रेमचंद की कहानियों पर विचार करते हुए उनमें मनोवैज्ञानिक तत्वों की पड़ताल करते हैं। उनका मत है कि "चरित्र और कथानक प्रेमचंद की कहानियों में असली जीवन में आते है। कहानी-लेखन के लिए एक सुस्पष्ट मनोवैज्ञानिक आधार उन्हें सबसे ज्यादा जरूरी लगता है।''[15]

उपर्युक्त समस्त विवेचनों को ध्यान में रखते हुए साहित्य में मनोविज्ञान-संबंधी प्रेमचंद की मान्यताओं के विषय में कुछ और कहने-सुनने की आवश्यकता नज़र नहीं आती। अंत में, प्रेमचंद-साहित्य के गंभीर अध्येता डॉ० कमलकिशोर गोयनका की इस युक्ति को निष्कर्ष-रूप में कहना उचित प्रतीत होता है–"वास्तव में, हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास में पहली बार किसी कथा-लेखक ने कथा एवं पात्र के व्यक्तित्व में मनोविज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया। जिससे कथा एवं पात्र अधिक से अधिक विश्वसनीय एवं यथार्थपूर्ण बन सके।.....अपनी सम्पूर्ण सामाजिकता एवं पात्रों की क्रियात्मकता के होते हुए भी उनका विचार था कि पात्र के मनोगत भावों और चरित्र के रहस्यों को खोलना ही लेखक का प्रधान उद्देश्य है।''[16]

संदर्भ-सूची

1. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ० सं० 10
2. वही, पृ० सं० 13
3. वही, पृं० सं० 15
4. वही, पृ० सं० 12
5. वही, पृ० सं० 30
6. वही, पृ० सं० 30
7. वही, पृ० सं० 51
8. वही, पृ० सं० 51
9. वही, पृ० सं० 56
10. वही, पृ० सं० 56-57
11. उद्धृत-सं०-महेश दर्पण, चर्चित कहानियाँ : प्रेमचंद, पृ० सं० 07
12. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ० सं० 96
13. वही, पृ० सं० 60
14. वही, पृ० सं० 61
15. सं०-महेश दर्पण, चर्चित कहानियाँ : प्रेमचंद, पृ० सं० 07
16. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद : अध्ययन की नई दिशाएँ, पृ० सं० 179

बाल मनोविज्ञान की विशेषताएँ

'बाल मनोविज्ञान', अर्थात् 'बच्चों का मनोविज्ञान'। एक ऐसा मनोविज्ञान, जो बच्चों के जीवन, उनके कार्य-कलाप एवं उनके सम्पूर्ण संसार का गहन एवं वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करे। 'बालक' शब्द से एक ऐसा अक्स उभरता है, जिसमें कोमलता, उल्लास, कच्चापन, सरलता, नटखनपन, औत्सुक्य, कुतूहल एवं निश्छलता का मिला-जुला रूप हो। ये समस्त प्रवृत्तियाँ बाल्यावस्था का आवश्यक अंग होती है। सामान्यत: बारह-तेरह वर्ष की अवस्था तक का समय बाल्यावस्था के अंतर्गत आता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, जन्म के बाद एक वर्ष तक की अवस्था शैशवकाल (Infancy), एक वर्ष से पाँच-छह वर्ष तक आरंभिक बाल्यावस्था तथा पाँच-छह वर्ष से बारह-तेरह वर्ष बाल्यावस्था और बारह-तेरह वर्ष से सोलह-सतरह वर्ष तक का समय किशोरावस्था होता हैं

शैशवावस्था में बालक पूर्णत: माँ पर आश्रित रहता है। वह कम लोगों को पहचानता है, अस्पष्ट ध्वनियाँ निकालता है, भूख एवं भय आदि के कारण रोता है और हाथ-पैर हिलाकर किलकारियाँ भरता है, खिलखिलाता है। इस दौरान वह कई तरह की आंगिक चेष्टाएँ करता है। इस अवस्था के शिशु में कई तरह के शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन घटित होते हैं। बालक स्वयं उठकर बैठने के बाद पहले घुटने के बल चलना शुरू करता है और फिर खड़ा होने का प्रयत्न करता है। इसके बाद वह चलने लगता है और फिर दौड़ने भी लगता है। इस प्रकार बालक में तमाम तरह के परिवर्तन तेजी से सम्पन्न होते हैं। इस क्रम में अस्पष्ट ध्वनियों के बाद थोड़ा स्पष्ट एवं उसके बाद स्पष्ट आवाज निकालना, बालक के व्यवहार का अंग बन जाता है। वह लोगों को पहचानने लगता है और तदनुरूप व्यवहार भी करना शुरू कर देता है।

यह सारा कार्य-व्यापाार दो-ढाई वर्ष तक चलता है। उसके बाद बालक की चेतना विकसित होने लगती है। इस दौरान बालक के माता-पिता एवं उसके अभिभावकों (बालक के साथ रहते हैं) की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। बालक एक कच्चे घड़े के समान होता है, जिसे जिस रूप में चाहा जाए, ढाला जा सकता है। यह रूप निर्धारित करते हैं–बालक के माता-पिता, उसका परिवार एवं सम्पूर्ण परिवेश। वस्तुत: "बालक के जीवन में विशेषकर उसके विकासात्मक अवस्थाओं में घर का बहुत बड़ा महत्व है। उसके घर और पड़ोस की आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थितियाँ उसकी योग्यताओं पर अच्छा या बुरा प्रभाव डाल सकती हैं। इनके अनुसार उसे अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के अनुभव मिलते हैं। इन अनुभवों में जितना विस्तार और भिन्नतायें होंगी उतनी ही उसकी योग्यताओं में उन्नति होगी और उसकी साधारण योग्यतायें भी श्रेष्ठता प्राप्त कर लेंगी।"[1]

बोलने की शुरूआत के साथ ही बालक का असली जीवन आरंभ हो जाता है। वह हर चीज को कौतूहल से देखता है, उसे जानना-समझना चाहता है। बालक तरह-तरह के अटपटे सवाल भी पूछता है। इस दौरान उसकी सीखने की प्रक्रिया अपने चरम पर होती है। बालक के अन्दर अनुकरण की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा होती है। वह हर चीज का अनुकरण करना चाहता है। बालक द्वारा किया गया "अनुकरण ऐच्छिक, अनैच्छिक और कभी अचेतन भी हो सकता है। ऐच्छिक अनुकरण में बालक जानबूझकर स्वीकृत व्यवहार को प्राप्त करने के लिए क्रिया करता है। यह व्यवहार कोई कला, सामाजिक व्यवहार या साधारण चरित्र कोई भी हो सकता है, जैसे कि शब्दों का उच्चारण (Pronunciation) और स्वराघात (Accent) जो कि बालक अध्यापकों और माता-पिता से सीखता है। बालक दूसरों के व्यवहार को एक आदर्श (Model) के रूप में देखता है। बालकों के नायक (Hero) प्रारम्भिक स्थिति में माता-पिता, बड़े भाई-बहन और स्कूल में अध्यापक हुआ करते हैं। धीरे-धीरे दूसरों मित्रों में भी उसका अपने आदर्श (Model) दिखाई देने लगते हैं।"[2]

बालक कभी-कभी अपनी इच्छा के विपरीत अनुकरण करता है। कई बार वह किसी की खास शैली को देखकर उसकी नकल करता है। इसी प्रकार बालक के कुछ अनुकरण ऐसे भी होते हैं, जो अनायास ही बालक के व्यवहार का हिस्सा बन जाते हैं। ऐसा अनुकरण अचेतन में होता है। जैसे, किसी के साथ उठते-बैठते, बालक उसके बातचीत करने का ढंग सीख लेता है। इस अवस्था में माता-पिता एवं बच्चे के अभिभावकों की जिम्मेदारी काफी बढ़ जाती है। उन्हें हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका बच्चा किनके साथ उठता-बैठता है, खेलता-घूमता है एवं क्या-क्या बातें सीखता है? घर में भी हर समय यह ध्यान रखने की जरूरत है कि बच्चे के सामने बड़े स्वयं अच्छे ढंग से रहें और बच्चे को रहने के सही तौर-तरीकों के बारे में बताएँ। प्राय: प्रौढ़ लोग बच्चों के सामने ही लड़ने-झगड़ने लगते हैं और गालियों का धडल्ले से उच्चारण करते हैं। बच्चा भी इसका अनुकरण करता है। कई बार माता-पिता का आपसी कलह बच्चे में कई तरह की कुण्ठाओं को जन्म देता है। बच्चा घर-परिवार एवं आस-पड़ोस में जो कुछ भी देखता-सुनता है, उसका सीधा अनुकरण करता है। बच्चों में अच्छे-बुरे की समझ नहीं होती, यह काम उसके संरक्षक ही कर सकते हैं। संरक्षकगण बच्चे को अच्छे और बुरे का अन्तर एवं महत्व समझा सकते हैं। उसकी लाभ-हानि के बारे में बता सकते हैं। अभिभावकों को यह भी चाहिए कि वे बच्चों को सदैव उत्साहित प्रोत्साहित करते रहें, बच्चों की छोटी-छोटी उपलब्धियों पर उन्हें शाबाशी दें। ऐसा नहीं कि एक गलती पर बच्चे के कोसना शुरू कर दें। प्राय: बच्चों के स्कूल में फेल हो जाने पर या दूसरे बच्चे से कम अंक प्राप्त करने पर बड़े अपने बच्चों को कोसना-डाँटना शुरू कर देते हैं।

इससे उसके मन में तरह-तरह की कुण्ठा एवं हीन भावनाएँ पनपने लगती हैं, जो आगे चलकर मानसिक रोग बन जाती हैं। अत: बच्चों की असफलताओं पर भी उन्हें प्रोत्साहन एवं प्रेरणा देने की महती आवश्यकता होती है।

बालकों के लिए खेल अत्यन्त रुचिकर चीज है। खेल के लिए बच्चे खाना-पीना, माता-पिता सबको भूल जाते हैं। खेल एक मानसिक वृत्ति है, जिसका आरंभ शैशवकाल से ही हो जाता है। माँ की गोद में ही बच्चा हाथ-पैर हिलाकर हंसते हुए खेल की शुरूआत करता है। फिर धीरे-धीरे बड़ा होने पर उसकी उम्र के अनुसार खिलौने दिए जाते हैं। बच्चा खिलौनों के साथ मग्न होकर खेलता है। शिशु वर्ग के बच्चों को जब तक भूख न लगे, वे खेल से अलग नहीं हो सकते। वस्तुत: खेल में बच्चा सबसे अधिक स्वतंत्र होता है और आह्लादित भी। "खेल में ही बच्चे दुनिया को देखते हैं, खेल में ही व्यक्ति की क्षमताएँ प्रकट होती हैं। खेल के बिना तो सर्वांगीण, पूर्ण बौद्धिक विकास हो ही नहीं सकता। खेल संसार में खुलने वाली विशाल खिड़की के समान है, जिसके रास्ते चारों के संसार के बारे में कल्पनाओं, धारणाओं की जीवनदायी धारा बच्चे के आत्मिक जगत में प्रवेश करती है। खेल वह चिनगारी; जो जिज्ञासा और कुतूहल की आग जलाती है.....बौद्धिक शक्ति के खेल और सृजनात्मक कल्पना के बिना तो छोटे बच्चों की सर्वांगीण शिक्षा से हो ही नहीं सकती।"[3] इस प्रकार बालकों के जीवन में खेल का बेहद महत्व है। खेल शारीरिक दृष्टि से बच्चों के लिए आवश्यक तो है ही, सामाजिक दृष्टि से भी यह काफी उपयोगी है। यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि बच्चों में सामाजिकता की भावना का विकास खेल से ही आरंभ होता है। खेल के दौरान बच्चा सामाजीकरण की प्रक्रिया के साथ सबसे ज्यादा जुड़ा रहता है। खेल के समय बच्चा दूसरे बच्चों से मिलता है, उनसे खिलौनों का आदान-प्रदान करता है। एक गेंद से कई बच्चे एक साथ खेलते हैं। इससे उनमें आपसी भाईचारे एवं सद्भाव की भावना पनपती है। यह प्रवृत्ति जीवन भर काम आती है। खेल के अन्तर्गत्त बच्चे में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास होता है। वह जीतने के लिए दिमाग भिड़ाता है, योजनाएँ बनाता है और संघर्ष करता है। इससे बालक के भविष्य के लिए रास्ते खुलते हैं। यूँ कहा जाय कि बच्चे की आगामी जिन्दगी में आने वाली प्रतियोगिताओं एवं समस्याओं से सामना करने का प्रशिक्षण खेलों में मिलता है। "अगर बालक को खेल की प्रवृत्तियों को प्रगट करने का अवसर नहीं मिलता तो उसका संबंध समाज में टूटता जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि खेलों के विभिन्न रूपों की सहायता से बालक सामाजिक बनता है और उसकी भावनाओं में परिपक्वता आती है।"[4]

शिशु-अवस्था से लेकर बाल-अवस्था एवं उसके किशोरावस्था तक बच्चों के खेलों का स्वरूप

बदलता रहता है। उल्लेखनीय है कि शैशवकाल और प्रारंभिक बाल्यकाल में बालक-बालिकाओं के खेलों में कोई लैंगिक भिन्नता नहीं होती, दोनों के खेल समान होते हैं। दोनों गुड्डे-गुडियों एवं छोटे-छोटे खिलौनों से खेलते हैं। लेकिन उम्र बढ़ने के साथ लड़के जहाँ कूदने-फाँदने वाला खेल शुरू कर देते हैं, वही लड़कियाँ **'घरेलूटाइप'** खेलों में सिमटने लगती हैं। लड़के अपने वर्ग के साथ खेलने लगते हैं और लड़कियाँ अपने समुदाय के साथ। वस्तुत: यह भेद सामाजिक मान्यताओं के कारण उत्पन्न होते हैं। बचपन से ही लड़कियों को उनके अस्तित्व एवं उनकी वस्तुस्थिति का एहसास कराना शुरू कर दिया जाता है और लड़के-लड़कियों के अंतर का यह बीज बच्चे के मन में ही आरंभ में ही डाल दिया जाता है।

समाज में सभी बच्चों के खेल एक समान नहीं होते। आयु, लिंग, स्थान, वर्ग, जाति, वातावरण, जलवायु एवं प्रकृति आदि के अनुसार बालकों के खेल अलग-अलग तरह के होते है। उदाहरण के लिए, शहर के बच्चों के खेल और गाँव के बच्चों के खेल में परस्पर भिन्नता होती है। ऊँचे वर्ग के पैसे वाले घरों के बच्चे तथा निर्धन एवं छोटे वर्ग के बच्चे एक ही तरह के खेल नहीं खेलते हैं। इसी प्रकार जलवायु एवं प्रकृति के प्रभाव वाले क्षेत्रों के खेतों में भी अन्तर स्वाभाविक है।

बच्चों की दुनिया में कल्पना का बहुत अधिक महत्व है। बालकों का अधिकांश कार्य व्यवहार कल्पना लोक की सहायता से संपादित होता है। "प्रारंभिक स्थितियों में बालकों की कल्पनात्मक क्रियाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है–(1) निर्जीव वस्तुओं से इस ढंग से बातें करना जैसे वे जीवित हों, जिसको मानवीयकरण (Pessonification) कहा जा सकता है। (2) वस्तुओं का इस ढंग से प्रयोग करना कि वह वस्तु न होकर बालकों की मनोसृष्टि का रूप बन जाती है, जैसे एक खाली प्याले में से दूध या चाय पीना या कागज़ के डिब्बों को रेल का डिब्बा समझकर उसी ढंग से व्यवहार करना। (3) मनोसृष्टि की स्थितियों के अनुसार व्यवहार करना, जैसे आग बुझाने की नक़ल करना।"[5] उम्र बढ़ने के साथ-साथ बच्चों का कल्पना-फलक भी विस्तृत होता जाता है। अब बच्चा बहुत कुछ अनदेखा, अनछुआ एवं अनजान वस्तुओं-स्थितियों की कल्पनात्मक सृष्टि करने लगता है। यही कारण है कि बच्चों को वैसी कहानियाँ अधिक रूचिकर लगती हैं, जिनमें उनकी कल्पना की उड़ान के लिए बड़ा आकाश मिले। बच्चे क़ार्टून फिल्में भी काफी पसंद करते हैं, क्योंकि कार्टून फिल्में मनोरंजन के साथ-साथ कल्पना का एक मनोहर संसार रचती हैं।

स्पष्ट है, कल्पना बाल-संसार का अनिवार्य अंग है। श्री एम० ए० शाह लिखते हैं–"बालकों की कल्पनात्मक क्रियायें उनको भविष्य के लिये तैयार करने में भी सहायक होती हैं। इस प्रकार की

तैयारी से बालकों की शक्तियाँ बढ़ती हैं और उसके साथ ही उनकी कठिनाइयों का भी अनुमान होता है। जैसे-जैसे बालक बढ़ता जाता है वह भविष्य की बुराइयों-भलाइयों का अनुमान ज्यादा उचित ढंग से लगाने के योग्य होता जाता है। इस ढंग से उसमें उद्देश्यों के ज्ञान करने और उनके प्राप्त करने के लिये व्यवहार करने की योग्यता विकसित हो जाती है।''[6]

बच्चों की बोली बड़ी प्यारी लगती है। आरम्भ में बच्चे प्राय: तुतलाते हुए बोलते हैं। बच्चे सीधे, सरल शब्दों में बातचीत करते हैं, जिन्हें प्रौढ़ जन 'बचकानीभाषा' कहते हैं। बच्चों का भाषा-संस्कार बनने में अनुकरण का बड़ा योगदान रहता हैं। प्रत्येक बच्चा अपने घर-परिवार एवं परिवेश से ही भाषा सीखता है। जिस परिवार एवं समाज में, जो भाषा प्रचलित होती है, बच्चे उसे ही बोलना-सीखना शुरू करते हैं। कई बार जिन परिवारों में प्रौढ़ जन बातचीत के दौरान अक्सर गाली का प्रयोग करते हैं, उस घर का बच्चा निश्चित रूप से इसका अनुकरण करेगा और वह भी बात करते समय गाली का प्रयोग करेगा। यद्यपि ऐसे बच्चे गाली का सही अर्थ नहीं समझते, किन्तु परिवार के बड़े सदस्यों का अनुकरण करने के कारण वे ऐसा करते हैं। "परिवार की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति से भी बोली का विकास सम्बद्ध होता है। निम्न वर्ग के बालकों को अपनी बुद्धि के विकसित करने का उचित अवसर नहीं मिलता और इस कारण से विकास में बाधा पड़ जाती है। बुद्धि के साथ ही पर्यावरण के प्रभावों की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इसका प्रभाव बोली पर महत्त्वपूर्ण होता है। निम्न वर्गों के बालक इतना विस्तृत पर्यावरण नहीं पाते, जितना उच्च वर्गों के बालक। इसी कारण उनकी बोली भी कम विकसित हो पाती है। उच्च वर्ग के माता-पिता भी बालक की देख-रेख में अधिक समय दे सकते हैं और उनकी शिक्षा का प्रबंध कर सकते हैं, किन्तु यह सुविधायें निम्न वर्ग़ के बालक को नहीं मिलती।''[7] जाहिर है बच्चों पर परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों का काफी प्रभाव पड़ता है। जिन बच्चों के परिवार में जीवन से संघर्ष चलता है, मेहनत-मज़दूरी होती है, वे बच्चे अधिक कर्मठ, परिश्रमी एवं साहसी होते हैं। मज़दूरों एवं भूमिहीन किसानों के बच्चे छोटी अवस्था से ही रोजी-रोटी तलाश में जुट जाते हैं। उच्च वर्ग वाले परिवारों के बच्चे प्राय: अधिक लाड़-प्यार पाकर बिगड़ जाते हैं। आगे चलकर उनमें नशाखोरी की लत एवं अपराध भावना पनपने लगती है।

बच्चों की चर्चा हो और उनके 'हठ' का जिक्र न आये, यह कैसे संभव है। प्राय: हर बच्चे में 'जिद़' की प्रवृत्ति पाई जाती है। कुछ बच्चे ज्यादा हठी होते हैं, कुछ कम। कई बार छोटी-छोटी बातों को लेकर भी बच्चे जिद़ करते हैं और अपनी बातें मनवाने के लिए रोना-चिल्लाना शुरू कर देते हैं और अक्सर रूठ भी जाते हैं। कभी-कभी किसी वस्तु को पाने के लिए भी बच्चे जिद़ पर

अड़ जाते हैं। आये दिन घरों में यह दृश्य देखने को मिलता है। बच्चों में अहंवृत्ति पाई जाती है। कभी-कभी वे किसी बात को अपने अहं से जोड़ लेते हैं और जल्दी समझौता नहीं करते। बच्चों के अन्दर कहीं-न-कहीं एक समझ भी होती है। वे जाने-अनजाने अपनी सूझबूझ का प्रयोग भी करते हैं, किन्तु प्रौढ़ उसे गंभीरता से नहीं लेते, क्योंकि उनके लिए बच्चे केवल भोले भाले और नादान, नासमझ होते हैं।

चर्चा के क्रम में एक और जरूरी प्रश्न पर विवाद-विमर्श आवश्यक लग रहा है। बच्चे प्राय: गलतियाँ करते हैं, शरारतें करते हैं, बड़ों का कहना भी नहीं मानते। अब सवाल है, इससे कैसे निपटा जाय? सामान्यत: माता-पिता एवं शिक्षक बच्चों की गलती पर पहले तो उन्हें प्यार से समझाते हैं एक बार में नहीं मानने पर वे तत्काल तमाचा जड़कर छुट्टी पा लेते हैं। वे बच्चे की गलती का कारण तक जानना नहीं चाहते और न ही बच्चे की समस्या का हल चाहते हैं। वे तो बस अपनी बातें मनमाना चाहते हैं, चाहे जैसे भी हो। यह सब गलत तरीका है और बच्चों पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। मनोवैज्ञानिक बच्चों के प्रति ऐसे व्यवहार पर सख्त एतराज जताते हैं। वे बच्चों द्वारा ऐसी हरकतें करने पर उनके साथ प्यार से पेश आने (Soft Handling) की सलाह देते हैं। ऐसा नहीं कि मनो वैज्ञानिक बच्चों को दण्ड के हिमायती ही नहीं है, वे दण्ड के पक्षधर हैं, परन्तु आंशिक रूप में और केवल आवश्यकतानुसार ही। केवल दण्ड के लिए दण्ड देना बालकों के लिए काफी खतरनाक होता है। मनोवैज्ञानिकों की राय है कि बालकों के अनुचित व्यवहार हेतु उन्हें प्राकृतिक दण्ड दिया जा सकता है और यह उनके प्रशिक्षण एवं सुधार के लिए जरूरी तथा उपयोगी भी होता है। वैसे बेहतर तो यही है कि बच्चों को उनके अशिष्ट आचरणों के परिणामों की जानकारी दी जाय। अर्थात् उन्हें उनकी गलती का भान कराया जाय। बच्चों पर कायदे-कानून सीधे नहीं थोपे जा सकते। संयम या आत्मसुधार का पाठ बच्चों को नहीं पचता।

सच्चाई यह है कि "आत्म-नियंत्रण बहुत ही जटिल और कठिन कार्य है और इसलिये बालक को ऐसे नियम और आदेश देने चाहिये जिनको वह सरलता से समझ सके और उनका पालन कर सके। बालक को यह ज्ञान हो जाना चाहिए कि यह नियम और सिद्धान्त उसकी और उसके साथियों की भलाई और रक्षा के लिये हैं और इसलिये नहीं हैं कि प्रौढ़ उनके ऊपर अधिकार दिखाना चाहते हैं। इन आदेशों और नियमों का पालन करने में बालक को यह अनुभव नहीं होना चाहिए कि उसके ऐसा करना अनिवार्य है और मज़बूरी है।"[8]

इस प्रकार, बाल मनोविज्ञान के अन्तर्गत बच्चों के जीवन के समस्त पहलुओं पर वैज्ञानिक ढंग से विचार-विमर्श होता है और बच्चों की समस्याओं का हल निकाला जाता है।

संदर्भ-सूची

1. एम० ए० शाह, बाल मनोविज्ञान, पृ० सं० 94
2. वही, पृ० सं० 34
3. वसीली, सुख़ोम्लीन्स्की, बाल हृदय की गहराइयाँ, पृ० सं० 124
4. एम० ए० शाह, बाल मनोविज्ञान, पृ० सं० 42
5. वही, पृ० सं० 102
6. वही, पृ० सं० 103
7. वही, पृ० सं० 128
8. वही, पृ० सं०

दूसरा अध्याय -

प्रेमचंद की कहानियों में बाल मनोविज्ञान:

उप अध्याय :

(1) *बच्चों के लिए लिखी गई कहानियों में बाल मनोविज्ञान*

(2) *बच्चों के बारे में लिखी गई कहानियों में बाल मनोविज्ञान*

बच्चों के लिए लिखी गई कहानियों में बाल मनोविज्ञान :

बाल साहित्य क्या है?

बाल कहानियाँ, बाल साहित्य का सबसे प्रमुख अंग रही हैं। होश संभालते ही कथा-कहानियों से बच्चों का परिचय होने लगता है। अक्सर दादा-दादी एवं नाना-नानी बालकों के लिए कहानी का प्रमुख स्रोत होते हैं। कई बार माताएँ भी बच्चों को भूत-प्रेत की कहानियाँ सुनाती हैं। ऐसी कहानियाँ प्राय: राजा-रानी, परी, देवी-देवताओं, महापुरुषों एवं जानवरों से संबंधित होती हैं।

प्रेमचंद ने बच्चों के लिए भी कहानियाँ लिखी हैं, जिनकी गिनती उनके बाल साहित्य के अन्तर्गत की जाती है। उन कहानियों में बाल मनोविज्ञान का अध्ययन करने अर्थात् उन्हें बाल साहित्य की कसौटी पर कसने से पूर्व यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि बाल साहित्य क्या है? किसे बाल साहित्य माना जाय?

बाल साहित्य का सीधा अर्थ है, बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य। ऐसा साहित्य, जिसमें बच्चों की भावनाएँ, आकांक्षाएँ, कल्पना, उनकी रूचियाँ, खेलकूद, रूठना-मचलना एवं शरारतों का इन्द्रधनुषी संसार हो। बाल साहित्य के प्रख्यात् लेखक एवं बाल पत्रिका **'नंदन'** के संपादक जय प्रकाश भारती कहते हैं, "बाल साहित्य के साथ पहली शर्त यह कि वह मनोरंजक हो। साथ ही बालक को जो साहित्य दिया जाए, उसका रागात्मक संबंध सृष्टि के साथ, नक्षत्रों के साथ, प्रकृति के साथ, जीव-जन्तुओं के साथ, जोड़ सके और जीवन का आलोक पा सके।"[1]

श्री भारती आगे कहते हैं कि "बाल साहित्य कल्पना, उत्साह, आशा, उमंग, विश्वास और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम की भावनाओं में छलकता है। पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी बालक के मित्र होते हैं।"[2] बच्चों की रचनाओं के साथ जो दो-तीन बातें और महत्वपूर्ण हैं, वे हैं–विषय की सहजता और भाषा की सरलता। इसके साथ ही शैली का बोधगम्य और प्रवाहमयी होना भी आवश्यक है। बाल-साहित्य वही नहीं होता, जो स्कूली पाठ्यक्रमों में शामिल होता है। बाल साहित्य में उपदेशात्मकता एवं स्थूल वर्णनों का कोई स्थान नहीं है। युवा लेखक जाकिर अली 'रजनीश' ने अपने एक लेख **'बाल साहित्य : स्वरूप और सिद्धान्त'** में डॉ० गुरूशरण सिंह को उद्धृत किया है। डॉ० साहब बाल साहित्यकारों की सीमा रेखा निर्धारित करते हुए लिखते हैं–"बच्चों का मन कोमल होता है। उनके मन पर स्थितियों, घटनाओं, मार्मिक दृश्यों का सीधा प्रभाव पड़ता है। इससे उनके जीवन की दिशा में परिवर्तन आ सकता है। इसलिए बाल साहित्यकार को उन्हीं स्थितियों का वर्णन करना चाहिए, जिनका बालमन पर सही प्रभाव पड़े।"[3]

बाल साहित्य लिखने के लिए स्वयं बच्चा बनना पड़ता है। बालकों की भाषा में, उनकी संवेदना को व्यक्त करना ही उत्कृष्ट बाल-साहित्य है। बच्चों के लिए बाल साहित्य की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। इसीलिए तो बाल साहित्य के मूर्धन्य विद्वान आचार्य विष्णु कान्त पाण्डेय लिखते हैं कि "बाल साहित्य ऐसा हो जो बच्चों की जिज्ञासाएँ शांत करे, रूचियों में परिष्कार लाये, और बच्चों में अच्छे संस्कार भरे। बाल साहित्य में विविधता अनिवार्य है, क्योंकि बाल रुचियाँ भी विभिन्नताओं से परिपूर्ण हैं।"[4] बाल साहित्य से बाल हृदय की संवेदना का सहज चित्रण होना चाहिए, जिसे बालक आसानी से आत्मसात कर सकें। बच्चों का अपनी रचनाओं में निहित पात्रों, घटनाओं, वस्तुओं एवं स्थितियों से तादात्म्य स्थापित होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना इस लगाव के कोई बाल साहित्य बच्चों के लिए रूचिकर एवं ग्राह्य हो ही नहीं सकता। इस क्रम में एक और महत्वपूर्ण बिन्दु को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि 'बालक' किसे माना जाए? अपने पिछले अध्याय में मैंने लिखा है कि मनोविज्ञानियों की राय में जन्म के बाद एक वर्ष तक की अवस्था शैशव काल (Infancy), एक वर्ष से पाँच-छह वर्ष तक की अवस्था आरंभिक बाल्यावस्था तथा पाँच-छह वर्ष से बारह-तेरह वर्ष की अवस्था बाल्यावस्था और बारह-तरेह वर्ष से सोलह-सत्तरह वर्ष तक की आयु किशोरावस्था होती है। इस प्रकार, मोटे तौर पर पाँच-छह से बारह-तेरह वर्ष के आयु के बच्चे बाल्यावस्था में आएंगें।

प्रेमचंद की बाल कहानियाँ

प्रेमचंद की बाल कहानियों के अन्तर्गत **'जंगल की कहानियाँ'**, **'सैलानी बन्दर'**, **'नादान दोस्त'**, **'बीमार बहन'** तथा **'कुत्ते की कहानी'** है। **'जंगल की कहानियाँ'** प्रेमचंद रचनावली-भाग-18 (जीवनी एवं बाल साहित्य) में संकलित हैं। सर्वप्रथम यह पुस्तक सन् 1936 ई० में सरस्वती प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुई। 'हंस' पत्रिका के फरवरी 1936 ई० के अंक में इसके प्रकाशित हो जाने का विज्ञापन छपा। फिलहाल इस पुस्तक की हंस प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित 12 वें संस्करण (अप्रैल, 1961 ई०) की प्रति उपलब्ध है।"[5]

'जंगल की कहानियाँ' के अन्तर्गत कुल बारह कहानियाँ संगृहीत हैं। यह कहानियाँ **'शेर और लड़का'**, **'बनमानुष की दर्दनाक, कहानी'**, **'दक्षिणी अफ्रीका में शेर का शिकार'**, **'गुब्बारे पर चीता'**, **'पागल हाथी'**, **'साँप की मणि'**, **'बनमानुष खानसामा'**, **'मिट्ठू'**, **'पालतू भालू'**, **'बाघ की खाल'**, **'मगर का शिकार'** और **'जुड़वाँ भाई'**। जैसाकि संकलन के शीर्षक से स्पष्ट है, इन सभी कहानियों का संबंध जंगल और जानवरों से है। कुछ विशुद्ध शिकार कथाएँ भी हैं, जो बच्चों

लायक नहीं लगतीं। जानवरों से संबंधित होने के कारण इन्हें इस संग्रह में शामिल कर लिया गया होगा, ऐसा प्रतीत होता है। पहले उन कहानियों की चर्चा, जो बच्चों के लिए बोधगम्य एवं पठनीय हैं।

शेर और लड़का

'शेर और लड़का' संकलन की पहली कहानी है। यह एक चरवाहे लड़के की बहादुरी, सूझ बूझ एवं स्वामिभक्ति की कथा है। आरंभ में प्रेमचंद बच्चों को शेर के बारे में बताते हैं–"बच्चों, शेर तो शायद तुमने न देखा हो, लेकिन उसका नाम तो सुना ही होगा। शायद उसकी तस्वीर देखी हो और उसका हाल भी पढ़ा हो। शेर अक्सर जंगलों और कछारों में रहता है। कभी-कभी उन जंगलों के आस-पास के गाँवों में आ जाता है और आदमी और जानवरों को उठा ले जाता है। कभी-कभी उन जानवरों को मार कर खा जाता है तो जंगलों में चरने जाया करते हैं।"[6]

कहानी में एक गड़ेरिया का लड़का अपने मालिक के गाय-बैलों को रोज जंगल में चराने ले जाया करता था। एक दिन शाम को जब वह वापस लौटने के लिए जानवरों को इकट्ठा करने लगा तो एक गाय का पता न था। लड़का बाकी जानवरों को लेकर घर लौटा और उन्हें बाड़े में बाँध कर, बिना किसी को कुछ बताएँ गाय की खोज में अकेले ही जंगल की ओर चल पड़ा। कथाकर कहता है–"उस छोटे लड़के की यह हिम्मत देखो ! अंधेरा हो रहा है, चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, जंगल भाँय-भाँय कर रहा है, गीदड़ों का हौवाना सुनायी दे रहा है, पर वह बेखौफ जंगल में बढ़ा चला जा रहा है।"[7]

जंगल में इधर-उधर वह गाय को ढूँढ़ता रहा, लेकिन अंधेरा बढ़ने पर उसे डर भी लगने लगा। आखिर बच्चा ही था, कोई 'दारासिंह' तो था नहीं और वह भी जंगल में रात का समय। "जंगल में अच्छे-अच्छे आदमी डर जाते हैं, उस छोटे से बच्चे का कहना ही क्या।"[8] लड़का स्वामिभक्त था। उसने ठान लिया था कि गाय के लिए बगैर वापस नहीं लौटेगा। वह एक पेड़ पर चढ़ गया और दिन भर की शारीरिक-मानसिक थकान के कारण उसे तत्काल नींद भी आ गई। कुछ देर अचानक पेड़ हिलने से उसकी नींद टूट गई। देखने पर उसकी हालत खराब हो गई। पेड़ के नीचे एक शेर खड़ा था और उसकी ओर लालच भरी निगाह सें देख रहा था। लड़के के होश उड़ गए। उसके सामने साक्षात् मौत खड़ी थी, लेकिन हिम्मत से काम लिया, शेर दो दिनों तक वहाँ से टस-से-मस नहीं हुआ।

तीसरा दिन भी ऐसे ही निकल गया। भूख के मारे लड़के की स्थिति और बिगड़ने लगी।

बचाव का कोई रास्ता निकलते न देखकर उसका धैर्य एवं साहस चुकने लगा, "कभी-कभी तो उसके जी में आता कि शेर मुझे पकड़ ले और खा जाय। उसने हाथ जोड़कर ईश्वर से विनय की–भगवान क्या तुम मुझ गरीब पर दया न करोगे?''[9] यहाँ तक कि लड़का रोने भी लगा, लेकिन उसमें ग़ज़ब की हिम्मत थी और समझदारी भी, तभी तो मौत के सामने होते हुए भी उसने स्वयं को संभाले रखा और बच निकलने का उपाय सोचता रहा। "आखिर उसे एक तदबीर सूझी। वह पेड़ की फुनगी पर चढ़ गया और अपनी धोती खोलकर हवा में उड़ाने लगा कि शायद किसी शिकारी की नज़र पड़ जाय।''[10]

उसकी युक्ति सफल रही और झरने के पास उसे कुछ आदमी नज़र आए। लड़के की सूझबूझ की सही परिचय तो अब मिलता है–"जिस पेड़ पर लड़का बैठा था, वहाँ की जमीन कुछ नीची थी। उसे ख्याल आया कि अगर वे लोग मुझे देख भी लें तो उनकों यह कैसे मालूम होगा कि इसके नीचे तीन दिन का भूखा शेर बैठा हुआ है।''[11] लड़के द्वारा खतरे के प्रति आगाह किए जाने के कारण वे लोग सतर्क हो गए, कुछ ही पल बाद शेर ने उनके पैरों की आहट पायी, वह चौकन्ना हो गया और उन्हें देखते ही भूखे शेर ने उन पर हमला बोल दिया। लेकिन वे लोग भी तैयार थे और शेर मार डाला गया। यदि लड़के ने चिल्लाकर उन लोगों को होशियार नहीं किया होता तो उनकी जान भी खतरे में पड़ती और लड़का तो स्वयं फँसा ही था। लड़के की सूझबूझ और साहस का ही नतीजा था कि उसने अपनी जान भी बचाई और उन लोगों को भी। साथ ही एक खूँखार शेर को भी खत्म कराया।

शेर के मरने के बाद लड़का हर्ष के मारे भूख-प्यास सब भूल गया, 'जान बची तो लाखो पाये!' मालिक ने उसे गले लगा लिया। मालिक उसे ज़िन्दा देखकर आश्चर्यचकित था। उसने पक्का समझ लिया था कि शेर उसे खा चुका होगा। वैसे भी बड़े, बच्चों से ऐसी बहादुरी एवं सूझबूझ की आशा कहाँ रखते हैं। अंत में यह जानकर लड़के का मन उल्लासित हो गया कि गाय पहले ही घर पर सही सलामत पहुँच गई थी–"भूख-प्यास से भक्ति तक न रहने पर भी लड़का हँस पड़ा।''[12]

कहानी यहीं समाप्त हो जाती है, यद्यपि इसे थोड़ा और आगे बढ़ाया जा सकता था, जैसे लड़के की वफादारी, बहादुरी, अपने काम के प्रति निष्ठा एवं समझदारी से प्रभावित होकर मालिक न सिर्फ उसे इनाम देते, बल्कि जानवर चराने के काम से मुक्त करके कोई दूसरा बड़ा काम दे व देते, जो उसके लिए पारितोषिक स्वरूप ही होता। इससे बच्चों की एक, दूसरे तरह की प्रेरणा एवं सीख मिलती तथा कहानी की सोद्देश्यता भी बढ़ जाती।

बहरहाल, मूलत: यह एक साहसिक कथा है और बच्चों को प्रेरित करने वाली है। कहानी

मज़ेदार शैली में लिखी गई है। एक खास बात यह भी है कि प्रेमचंद न सिर्फ़ लड़के की स्थिति का बयान करते हैं, बल्कि शेर की मनोदशा को भी बताते चलते हैं। इससे कहानी में रोचकता एवं स्वाभाविकता आती है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में जानवरों को चेतनाशील प्राणी के रूप में चित्रित किया है। इस कहानी में शेर पानी पीकर जल्दी लौट आता है। प्रेमचंद लिखते हैं–"शायद उसने भी लड़के का मतलब समझ लिया था। वह आते ही इतनी ज़ोर से चिल्लाया और ऐसा उछला कि लड़के के हाथ-पाँव ढीले पड़ गये, जैसे वह गिरा जा रहा हो।''[13]

ऐसा करके वह लड़के को डराना चाहता था, ताकि डरके मारे वह फिसलकर गिर जाए। कहानी में लेखक शेर के मनोविज्ञान से पाठकों को भी परिचित कराता चलता है। लेखक लिखता है–"'ज्यों-ज्यों रात होती जाती थी, शेर की भूख भी तेज होती जाती थी। शायद उसे यह सोच-सोचकर गुस्सा आ रहा था कि खाने की चीज़ सामने रखी है और मैं दो दिन से भूख बैठा हूँ। क्या आज भी एकादशी रहेगी?''[14]

तीन दिन निकलने के बाद निराश होकर जहाँ लड़का ईश्वर को याद करता है, वहीं शेर महाराज का हाल कुछ यूँ है–"शेर को भी थकावट मालूम हो रही थी। बैठे-बैठे उसका जी ऊब गया। वह चाहता था कि किसी तरह जल्दी से शिकार मिल जाय।''[15]

शेर एक खूँखार जानवर है और यह आदमी को भी मारकर खा जाता है। कहानी में वह लड़के की जान के पीछे पड़ा हुआ है। कहानी के पाठकों विशेषकर बाल पाठकों की सहानुभूति अपने नायक अर्थात् लड़के के साथ है। लेकिन शेर को इस अंदाज से पेश किया गया है कि कहीं उसके प्रति मन में घृणा या क्रूरता का भाव नहीं पनपता। यह इस कहानी में प्रेमचंद की शैली की एक विशेषता है। कहानी में कई जगह मुहावरे एवं सूक्तियाँ भी आई हैं। जैसे, भांय-भांय करना, जौ भर भी न हटना, हाथ-पाँव ढीला पड़ना, हाथ-पाँव पेट में घुसना, आँखों में तितलियाँ उड़ना तथा मुँह माँगी मुराद मिलना आदि मुहावरों को समझने में बाल पाठकों को कोई खास दिक्कत नहीं आ सकती। कहानी में दो सूक्तियाँ भी आई हैं–'नींद चारपाई और बिछावन नहीं ढूँढ़ती' तथा 'भूख में सब्र कहाँ।' बच्चों के ज्ञान एवं उनके अनुभव-संसार में वृद्धि करने हेतु प्रेमचंद का यह प्रयोग उपयोगी है। उर्दू से घनिष्ठ रूप से जुड़े होने के कारण कहानी में कुछ शब्द ऐसे भी आ गए हैं, जो थोड़े कठिन हैं। हौवाना, बेख़ौफ, तदबीर, जस्त जैसे शब्द बच्चों के लिए सरल नहीं है। वहीं शेर का यह सोचना कि "क्या आज भी एकादशी रहेगी?''[16] बच्चों के लिए समझ पाना सहज नहीं होगा।

कहानी में बच्चा किसी सम्पन्न व्यक्ति के यहाँ नौकर है। वह ग़रीब परिवार का है। (यद्यपि

उसके परिवार का ज़िक्र नहीं है, हो सकता है, वह अनाथ हो।) लड़का अपने मालिक पर आश्रित है। एक तरफ़ उसके अंदर यह भावना है और इस कारण यह डर भी कि–कर्त्तव्य में कोताही करने से यह आश्रय छिन सकता है। इसी कारण गाय खोने पर उसके मन में तत्क्षण यह ख्याल आता है कि "मालिक मुझे जीता न छोड़ेंगे"[17] वह ईमानदार एवं स्वामिक्त भी है। गाय प्राप्त करने के लिए वह अपनी जान की बाजी लगा देता है। शेर से बचने की आभा क्षीण होने पर वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने तक लगता है। बच्चे समस्त प्रयासों से हारने के बाद रोने लगते हैं। लड़के की जगह कोई बड़ा आदमी होता तो संभव है, बेहोश हो जाता, लेकिन वह लड़का है, अत: रोने लगता है, शायद इससे कुछ समाधान मिले। अन्त में मालिक से मिलने पर लड़के की बातों में कितना भोलापन झलकता है। यह दृश्य दिल को छू जाता है। यह इस कहानी की सफलता है, आखिर यह बच्चों की कहानी है।

गुब्बारे पर चीता

'गुब्बारे पर चीता' एक मनोरंजक कहानी है। शहर में एक सर्कस आया हुआ है। जगह-जगह उसके आकर्षक विज्ञापन लगे हैं। बच्चे सर्कस देखने जाने हेतु मचल रहे हैं। बलदेव अकेला ही सर्कस देखने जाता है। वहाँ एक आदमी गुब्बारे का खेल दिखाने वाला है। तभी भगदड़ मच जाती है। एक चीता बाहर निकल गया है। बदलेदव जान बचाने के लिए गुब्बारे पर कूद जाता है, तभी चीता भी दौड़ते-दौड़ते गुब्बारे पर चढ़ जाता है, दोनों उड़ चलते हैं। अपने को ऊपर उड़ते देख चीते की हालत खराब होती है और वह डर के मारे एक जगह गिर पड़ता है और मर जाता है। जबकि बलदेव अपनी सूझबूझ से गुब्बारे का मुँह खोल देता है। गुब्बारा एक दरिया में गिरता है और बलेदव तैर कर निकल आता है।

बच्चों का मन सर्कस, मेला एवं मदारी का खेल देखने में खूब लगता है। गाँव में डुगडुगी की आवाज सुनते ही बच्चे बेतहाशा बाहर निकलकर भागते हैं। उन्हें पता होता है, कोई भालू या बंदर वाला होगा। पल भर में ही ढ़ेरों बच्चे मदारी का खेल देखने के लिए जमा हो जाते हैं। माता-पिता चाहे लाख उन पर रोक लगाएँ या पहरें बिठाएँ। कई बार वे चुपके से अपने घरों से अनाज या पैसे लाकर मदारी वालों को देते हैं।

इस कहानी में सर्कस की खबर सुनकर बच्चों के मन मचलने लगे हैं। अक्सर ऐसी सूचनाओं पर स्कूल में बच्चों के बीच खूब चर्चाएँ होती हैं। यहाँ भी यही हाल है–"एक स्कूल के सामने एक बड़ा मैदान है, कई लड़के खड़े हैं और बलदेव अपनी जेब में हाथ डाले हुए सब लड़कों को सरकस

देखने के लिए चलने की सलाह दे रहा है। बात यह थी कि स्कूल के पास एक मैदान में सरकस पार्टी आयी हुई थी। सारे शहर की दीवारों पर उसके विज्ञापन चिपका दिये गये थे। विज्ञापन में तरह-तरह के जंगली जानवर अजीब-अजीब काम करते दिखाये गये थे। लड़के तमाशा देखने के लिए ललचा रहे थे। पहिला तमाशा रात को शुरू होने वाला था।''[18]

ऊपर से स्कूल के हेड मास्टर साहब ने लड़कों पर वहाँ जाने की रोक लगा रखी है। हमारी स्कूली शिक्षा-पद्धति ही ऐसी है। बच्चों को किताबी-योद्धा बनाकर, उन्हें बाहरी दुनिया से काटकर रखना। ऊपर से शिक्षक महोदय लोग स्वयं को हिटलर से कम नहीं समझते हैं। बच्चों पर जितनी बंदिशें लगा सकें, उसी में उनकी सफलता है। लेकिन बच्चे तो बच्चे हैं। उनकी अपनी दुनिया है, जिसमें वे बड़ों की दखलअंदाजी सहन नहीं करते। वे अपनी रूचि के अनुरूप काम करना चाहते हैं। कक्षा की हालत यह है कि "लड़कों का मन तो सरकस में लगा हुआ था। सामने किताबें खोले जानवरों की चर्चा कर रहे थे। क्योंकर, शेर और बकरी एक बर्तन में पानी पियेगे? और इतना बड़ा हाथी पैर गाड़ी पर कैसे बैठेगा? पैर गाड़ी के पहिये बहुत बड़े-बड़े होंगे? और तोता बन्दूक छोड़ेगा? और बनमानुष बाबू बनकर मेज पर बैठेगा?''[19]

बच्चे ताने-बाने बुनने में लीन हैं। उनकी उत्सुकता बढ़ती जा रही है। स्थिति यहाँ तक है कि बलदेव हेडमास्टर साहब से मन-ही-मन कुढ़ते हुए छुट्टी के दिन तक की कल्पना कर रहे हैं–"बलदेव सबसे पीछे बैठा हुआ अपनी हिसाब की कापी पर शेर की तस्वीर खींच रहा था और सोच रहा था कि कल शनीचर नहीं, इतवार होता तो कैसा मजा आता।''[20] कक्षा में बैठा बलदेव छुट्टी होने का इंतजार कर रहा है। हेडमास्टर साहब की आज्ञा सुनकर वह आपे से बाहर है। कुछ ऐसी ही स्थिति प्रेमचंद की **'चोरी'** कहानी में भी है। जहाँ **'तालाब का मेला'** जाने के लिए लड़के उछल रहे हैं। ऊपर से उनके **'गुरूजी महाराज'** (मौलवी साहब) ने यह शर्त लगा दी है कि जो लड़का सबक नहीं सुना सकेगा, उसे छुट्टी नहीं मिलेगी। लेखक तो अपना सबक सुना देता है, लेकिन उसका दोस्त (चचेरा भाई) हलधर फंस जाता है। अंततः लेखक को हलधर के बिना ही मेला जाना पड़ता है और मेले में लेखक उदास रहता है। हलधर के बिना उसे कुछ मजा नहीं आता है।

इस कहानी में हेडमास्टर साहब के डर के कारण लड़कों की सर्कस जाने की हिम्मत नहीं हो पाई और वे मन मसोस कर रह गए। लेकिन बलदेव बड़ा जिद्दी था। वह जो ठान लेता, उसे करके ही छोड़ता था। कक्षा में कुछ लड़के ऐसे होते हैं, जो अपनी लीक अलग बनाकर चलते हैं। बलदेव भी कुछ ऐसा ही था। ऊपर से उसने कुछ पैसे भी जमा कर रखे थे, भला वह किस दिन काम आते। "शनीचर को और लड़के तो मास्टर के साथ गेंद खेलने चले गये, बलदेव चुपके से

खिसक कर सरकस की ओर चला।''[21] सर्कस में जानवरों की दयनीय हालत देखकर उसे काफी झुंझलाहट हुई। वह जानवरों के बारे में मन में ताने-बाने बुनने लगा। उसका बालमन जानवरों की शारीरिक स्थिति देखकर उनका विश्लेषण करता है–"वह शेर है! मालूम होता है महीनों से इसे मलेरिया बुखार आ रहा हो। वह भला क्या बीस हाथ ऊँचा उछलेगा। और यह सुन्दरवन का बाघ है? जैसे किसी ने उसका खून चूस लिया हो। मुर्दे की तरह पड़ा है। वाह रे भालू ! यह भालू है या सूअर, और वह भी काना-जैसे मौत के चंगुल से निकल भागा हो। अलबत्ता यह चीता कुछ जानदार है और एक तीन टांग का कुत्ता भी।'[22] बालकों के अंदर मूल्यांकन का अपना पैमाना होता है। वे चीज़ों को अपनी नन्हीं-सी चेतना के अनुसार आँकते हैं। बलदेव की कल्पनाशीलता सक्रिय है। कुत्ते को देखकर वह जोर से हँसा। "उसकी एक टाँग किसने काट ली? दुमकते कुत्ते तो देखे थे, पैर कटा कुत्त आज ही देखा। और यह दौड़ेगा कैसे?''[23]

बच्चों में धैर्य नहीं होता, उनका मन चंचल होता है। बलदेव ने अपने जमा किए पैसे खर्च किए थे और स्कूल में गेंद तथा दोस्तों का साथ छोड़कर आया था। यहाँ कुछ खास मनोरंजन तो होना ही चाहिए था। लेकिन यहाँ तो सर्कस के नाम पर मदारी भी देखने को नहीं मिला। "उसे अफसोस हुआ कि गेंद छोड़कर यहाँ नाहक आया। एक आने पैसे भी गये। ऐसे जानवरों को तो मैं सेंत-मेत भी न देखता।''[24]

कहानी में अचानक एक नाजुक मोड़ आता है। पलभर में इतना कुछ नया घटित हो गया कि बाल पाठक सनसनी एवं उत्सुकता से मर जाएँगे। पाठकों की समस्त एकाग्रता कहानी में केन्द्रित हो जाती है–"इतने में एक बड़ा भारी गुब्बारा दिखाई दिया। उसके पास एक आदमी खड़ा चिल्ला रहा था–"आओ, चले आओ, चार आने में आसमान की सैर करो।''[25] इतने में भगदड़ मच गई। एक चीता पिंजरे से बाहर निकल आया था। बलदेव भी जान बचाकर भागा और गुब्बारे पर चढ़ गया। कहानी में कौतूहल एवं रोमांच अपने चरम पर है। बलदेव जान बचाने की खातिर आनन-फानन में गुब्बारे पर चढ़ गया। चीते के बारे में प्रेमचंद लिखते हैं कि–"चीता भी शायद उसे पकड़ने के लिए कूदकर गुब्बारे पर जा पहुँचा।''[26] गुब्बारा ऊपर उड़ चला। एक बार फिर प्रेमचंद बलदेव की मनोदशा को आँक रहे हैं, चीते का हाल भी बयां करते हैं। बच्चों को यह चित्रण खासा लुभाने वाला है। उनका पशु-पक्षियों के साथ रागात्मक संबंध होता है। एक मांसाहारी जंगली जानवर को इस अंदाज में पेश करना रोचकता पैदा करता है। साथ ही चीते के साथ सहानुभूति का भाव भी जगाता है। उड़ते गुब्बारे में बलदेव का डर के मारे बुरा हाल तो था ही, लेकिन चीते की जान भी सूखी जा रही थी–"ज्यों-ज्यों गुब्बारा ऊपर उठता जाता था, चीते की जान निकली जाती

थी। उसकी समझ में न आता था कि कौन मुझे आसमान की ओर लिये जाता है। वह चाहता तो बड़ी आसानी से बलदेव को चट कर जाता, मगर उसे अपनी ही जान की फिक्र पड़ी हुई थी। सारा चीतापन भूल गया था।''[27]

यहाँ 'चीतापन' शब्द का प्रयोग बड़ा प्यारा है और बालकों के लिए मज़ेदार भी। इसके बाद चीता जैसा जानवर, जिसके डर से लोगों को कँपकँपी छूट जाती है, वह स्वयं इस अनहोनी हालत में इतना डर जाता है कि ऊपर से फिसल जाता है और गिरकर मर जाता है। यहाँ पर प्रेमचंद थोड़ा जल्दी कर देते हैं और चीते के साथ न्याय नहीं कर पाते। इसकी चर्चा थोड़ा आगे करेंगे।

चीते के गिर जाने के बाद बलदेव को स्वयं को लेकर डर समा जाता है। इस दौरान उसे तरह-तरह के ख्याल आ रहे होंगे, जो स्वाभाविक है, वह एक बार घंटा घर के मीनार पर चढ़ा था। ऊपर से उसे नीचे के आदमी खिलौनों से और घर घरौंदों से लगते थे। मगर इस वक्त वह उससे कई गुना ऊँचा था।''[28] बलदेव प्रेमचंद की कहानी का बाल पात्र है, उसमें सूझबूझ कैसे नहीं होगी, प्रेमचंद बालकों को ''चुन्नू-मुन्नू रूप में पेश नहीं करते, ''एकाएक उसे एक बात याद आ गयी। उसने किसी किताब में पढ़ा था कि गुब्बारे का मुँह खोल देने से गैस निकल जाती है और गुब्बारा नीचे उतर आता है।''[29]अब यहाँ बलदेव का बालमन का भोलेपन पुन: उभरता है। ''उसे यह न मालूम था कि मुँह बहुत धीरे-धीरे खोलना चाहिए। उसने एकदम उसका मुँह खोल दिया और गुब्बारा बड़े जोर से गिरने लगा।''[30]

बाल पाठकों की उत्सुकता अपने चरम पर पहुँच जाती है कि अब क्या होगा? लेकिन प्रेमचंद ने नीचे दरिया बहा रखा है। बलदेव रस्सी छोड़कर उसमें कूद पड़ता है और तैरकर बाहर निकल आता है। अन्त में कहानी थोड़ी जल्द खत्म हो जाती है। इसे बलदेव के स्कूल तक तो ले ही जाना चाहिए था, जहाँ बच्चों में इस घटना को लेकर ढेर सारे सवाल-जवाब चलते और बलदेव सबकी प्रशंसा का पात्र बनता। खैर, ऐसा हुआ ही होगा। प्रेमचंद को अपने बालपाठकों पर भरोसा है। शेष बातें वे खुद समझ लेंगे। कहानीकार चाहता तो चीता को बलदेव के साथ ही गिराता और दरिया के बगल में जंगल होता, चीता तैरकर बाहर निकलता और बलेदव उसकी पीठ पर बैठकर दरिया से बाहर आता। बलदेव को खाने की बजाय चीता जान बचाकर जंगल में भाग जाता। इससे बाहर आकर उसकी जान भी बच जाती और सर्कस की कैद से आज़ादी भी मिल जाती। मैं ऐसा इसलिए सोचता हूँ, क्योंकि चीता कहीं भय नहीं पैदा करता, उसकी स्थिति खुद हास्यास्पद है। वह जान की फिक्र में ही परेशान है। अत: उसे मरते देख पाठकों की सहानुभूति को थोड़ी ठेस पहुँच सकती है। चीते को मारने के पीछे प्रेमचंद की मंशा क्या रही होगी, यह ठीक-ठीक कहना तो कठिन है, लेकिन

इतना जरूर कहा जा सकता है कि प्रेमचंद की कहानी एवं उपन्यासों में मौत धड़ाधड़ होती है।

सर्कस में जाकर जब बलदेव ने जानवरों को देखा तो उसे बड़ी झुंझलाहट हुई। वहाँ उसका बाल सुलभ मन जानवर की जो तस्वीर तैयार करता है, उसका वर्णन देखकर ऐसा लगता है, जैसे कहानीकार ने बलेदव की कल्पना को अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है। वहाँ बाल सुलभ मन की झलक कम देखने को मिलती है–"वह शेर है। मालूम होता है। महीनों से इसे मलेरिया बुखार आ रहा हो। वह भला क्या बीस हाथ ऊँचा उछलेगा। और वह सुन्दरवन का बाघ है? जैसे इसका किसी ने खून चूस लिया हो। मुर्दे की तरह पड़ा है। वाह रे भालू ! यह भालू है या सूअर, और वह भी काना-जैसे मौत के चंगुल से निकल भागा हो। अलबत्ता यह चीता कुछ जानदार है और एक तीन टांग का कुत्ता भी।"[31] जानवरों की हालत देख बच्चे को क्षोभ तो हो सकता है, पर वह इस रूप में सोचेगा? बहरहाल, **'गुब्बारे पर चीता'** रोचक शैली में लिखी हुई कहानी है। इसमें बाल-मन की जिज्ञासा, कौतुहल, कल्पना एवं रोमांस के लिए पर्याप्त गुंजाइश है।

पागल हाथी

जानवरों में हाथी सबसे बड़ा होता है। बच्चों को हाथी काफी प्रिय होता है। गाँवों में या किसी मेले में जब बच्चे हाथी को देखते हैं, तो झूम उठते हैं। उनका मन हाथी पर चढ़कर सैर करने के लिए मचल उठता है। प्रेमचंद को इसका भान है। इसलिए वे अपने बाल मित्रों के लिए हाथी पर एक कहानी रच डालते है। इस कहानी का शीर्षक है, 'पागल हाथी' यह इस संकलन की एक और अच्छी व सीखभरी कहानी है।

हाथी यूँ तो सीधा-सादा और मस्त रहने वाला पशु है। लेकिन कभी-कभी ये जनाब भी गुस्सा करते हैं, फिर तो कयामत ढा सकते हैं। लेखक अपने हाथी का परिचय देता है–"मोती राजा-साहब की खास सवारी का हाथी था। यों तो वह बहुत सीधा और समझदार था, पर कभी-कभी उसका मिजाज़ गर्म हो जाता था और वह आपे में न रहता था। उस हालत में उसे किसी बात की सुधि न रहती थी, महावत का दबाव भी न मानता था।"[32]

क्रोध है ही ऐसी चीज! आदमी को क्रोध में भला-बुरा कुछ भी नहीं सूझता। लेकिन बाद में इसका -खामियाज़ा भी भुगतना पड़ता है। मोती ने एक बार पागलपन में आकर अपने महावत को ही मार डाला। फिर क्या था, उसे राजा साहब की नाराज़गी का शिकार होना पड़ा–"मोती की पदवी छिन गयी। राजा साहब की सवारी से निकाल दिया गया। कुलियों की तरह उसे लकड़ियाँ ढोनी पड़ती, पत्थर लादने पड़ते और शाम को वह पीपल के नीचे मोटी जंजीरों से बाँध दिया

जाता। रातिब बन्द हो गया। उसके सामने सूखी टहनियाँ डाल दी जाती थीं और उन्हीं को चबाकर वह भूख की आग बुझाता।''[33] गलती करने के बाद जब सजा मिलती है, तो बड़ा कष्ट होता है। कई बार गलती करने वाला इससे सुधर जाता है, लेकिन कई बार वह सजा से घबड़ाकर और गलतियाँ कर डालता है। मोती राजा भी ठाट-बाट में रहता था। उसे भला यह सब दु:ख कैसे सहन होता? लेकिन बजाय सुधरने के उसने कुछ और गलतियाँ कर डालीं। एक दिन जोश में आकर लोहे की जंज़ीर तोड़ डाली और जंगल की ओर चल पड़ा।

कैद से छूटने के बाद उसने जीभर के नदी में स्नान किया और अपने साथियों से मिलने जंगल को चला। प्राय: ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य के साथ रहने वाले पशु या पक्षी जब कभी वापस जंगल अपने समुदाय के लोगों के पास जाते हैं, तो वे इन्हें स्वीकार नहीं कर पाते। कुछ पशु तो उन्हें मार ही डालते हैं। लेकिन यहाँ प्रेमचंद बच्चों की कहानी लिख रहे हैं। वे बच्चों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जिससे नन्हें साथी कुछ सीख ग्रहण करें। केवल मनोरंजन करना लेखक का मुख्य उद्देश्य नहीं है, वह इसके साथ-साथ बच्चों में कुछ अच्छे गुण भी डालना चाहता है। जंगल में मोती जब अपने साथियों को देखता है तो प्रसन्न होकर मिलने के लिए दौड़ पड़ता है। लेकिन वे इसकी उपेक्षा करते हैं। अब प्रेमचंद इसका कारण बताते हैं–"जंगल के हाथियों ने जब उसके गले में रस्सी और पाँव में टूटी जंजीर देखी तो मुँह फेर लिया। उसकी बात तक न पूछी। उनका शायद मतलब था कि तुम गुलाम तो थे ही, अब नमक हराम गुलाम हो, तुम्हारी जगह इस जंगल में नहीं है।''[34]

मोती का गुलाम होना ही उन स्वतंत्र देश के निवासियों को पसंद नहीं था, ऊपर से इसने तो अपने मालिक के साथ गद्दारी तक कर डाली थी। कथाकार पशुओं के अन्दर भी इंसानियत के अच्छे गुण दिखाता है। अपने साथियों की इस उपेक्षा के बावजूद मोती की समझ नहीं लौटी। वह तो अपने मद में चूर था। उसने और बड़ी गलती कर डाली। रात में उसे राजा साहब का दल मिल गया। उन्हें देखते ही मोती उन पर पिल पड़ा। राजा साहब ने किसी तरह झोंपड़ी में घुसकर अपनी जान बचाई। लेकिन राजमहल में लौटते ही क्रुद्ध होकर मोती को पकड़वाने के लिए राजा ने इनाम की घोषणा कर दी। उन्हें मोती से यह अपेक्षा नहीं थी। लेकिन पागल मोती को पकड़ना इतना आसान नहीं था। जिसने भी कोशिश की, उसे अपनी जान तक से हाथ धोना पड़ा–कहानी में अब एक प्यारा-सा बाल चरित्र आता है–"मोती के महावत के एक लड़का था। उसका नाम था मुरली। अभी वह कुल आठ-नौ बरस का लड़का था इसलिए राजा साहब दया करके उसे और उसकी माँ को खाने-पहिनने के लिए कुछ खर्च दिया करते थे।''[35] वह जीवट वाला लड़का था और बुद्धिमान

भी। उसने मोती को पकड़ने का निश्चय किया। "मुरली था तो बालक पर हिम्मत का धनी था, कमर बाँध कर मोती को पकड़ लाने के लिए तैयार हो गया। माँ ने बहुतेरा समझाया, और लोगों ने भी मना किया, मगर उसने किसी की एक न सुनी और जंगल की ओर चल दिया।"[36] वह छोटा-सा बालक मोती को काबू करने में सफल हो जाता है। मोती को अपनी गलती का एहसास होता है और वह पुन: मुरली के साथ राजमहल लौट जाता है।

यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान देना जरूरी है। पागल हाथी को एक बालक काबू में करता है। कोई बड़ा व्यक्ति भी जुगत भिड़ाकर यह काम कर सकता था, लेकिन प्रेमचंद जानबूझ कर एक बच्चे को सामने लाते हैं। बच्चे प्यारे एवं भोले-भाले होते हैं। वे बिगड़े हुए काम को बना सकते हैं। कई बार जब हम बहुत क्रोध में रहते हैं, तनाव से मन परेशान रहता है, उस समय अचानक सामने कोई नन्हा-सा बालक आ जाए, उसका भोला मुखड़ा देखते ही हम सामान्य हो जाते हैं और बच्चे को पुचकारने में ही हमारी सारी उद्विग्नता हवा हो जाती है। दूसरी बात यह है कि प्रेमचंद के बच्चे सामान्य परिवारों के हैं। वे अभाव में पले हुए जरूर हैं, लेकिन उनमें साहस, ईमानदारी एवं सूझ की कमी नहीं है।

मुरली, पागल मोती को कितने प्यार से काबू करता है–"ज्यों ही मोती उस पेड़ के नीचे आया, उसने पेड़ के ऊपर से पुचकारा **'मोती'**।"[37]

जानवर भी बाल हृदय की निश्छलता से परिचित होते हैं। **'कुत्ते की कहानी'** में बच्चे कुत्ते के साथ खूब शरारत करते हैं, उसे तंग करते हैं। कोई टाँग पकड़ता है, कोई ज़ोर से उसका कान खींचता है, कोई पानी में फेंक देता है, पर कुत्ता किसी को नहीं काटता। वहीं अगर बड़े उन्हें छेड़ दें तो कुत्ते यथाशक्ति इसका प्रतिवाद करते हैं और कई बार इस गलती के लिए मजा भी चखा देते हैं। मुरली के प्यार के संबोधन को सुनकर मोती का मन सुगबुगाया–"मोती इस आवाज़ को पहिचानता था। वहीं रूक गया और सिर उठाकर ऊपर की ओर देखने लगा। मुरली को देखकर पहिचान गया। यह वही मुरली था, जिसे वह अपनी सूँड़ से उठाकर अपने मस्तक पर बैठा लेता था। मैंने ही उसके बाप को मार डाला है, यह सोचकर उसे बालक पर दया आई। खुश होकर सूँड हिलाने लगा।"[38] बालक मुरली के प्रति मोती का प्यार एक बार फिर उमड़ पड़ा। उसने मुरली को अपनी सूँड से उठाकर पहले की ही तरह अपने माथे पर बैठा लिया और राजमहल की ओर चल पड़ा।

कहानी का अंत बड़ा अच्छा है और प्रेरणाप्रद भी। मुरली को उसकी बहादुरी और सूझ-बूझ के लिए न सिर्फ़ घोषित पुरस्कार की रकम मिलती है, बल्कि इतनी कम उम्र में ही राजा उसे

खास महावत बना देता है। मोती को भी उसका पहले वाला स्थान प्राप्त हो जाता है। इस कहानी में शुरू से अंत तक कौतूहल और रोचकता बनी रहती है, नि:संदेह **'पागल हाथी'** एक अच्छी बाल कहानी है।

मिट्ठू :

'मिट्ठू' कहानी नाम से जितना मीठा एहसास करा रही है, पढ़ने पर यह उतनी ही मनोरम लगती है। यहाँ भी पशु और बालक का प्रेम है। प्रेमचंद आरंभ में ही बाल पाठकों में कौतूहल जगाकर उन्हें कहानी पढ़ने के लिए आकर्षित करते हैं। "बन्दरों के तमाशे तो तुमने बहुत देखे होंगे। मदारी के इशारों पर वह कैसी-कैसी नकलें करता है। उसकी शरारते भी तुमने देखी होंगीं तुमने उसे घरों से कपड़े उठाकर भागते देखा होगा। पर आज हम तुम्हें एक ऐसा हाल सुनाते हैं, जिससे मालूम होगा कि बन्दर लड़कों से दोस्ती भी कर सकता है।"[39]

बच्चों में उत्सुकता पैदा कर प्रेमचंद कहानी की शुरूआत करते हैं–"कुछ दिन हुए लखनऊ में एक सरकस कम्पनी आयी थी। उसके पास शेर, भालू, चीता और कई तरह के और भी जानवर थे। उसके सिवाय एक बन्दर मिट्ठू भी था। लड़कों के झुंड के झुंड रोज इन जानवरों को देखने आया करते थे। मिट्ठू ही उन्हें सबसे अच्छा लगता।"[40] जाहिर है, बच्चे अपने काम की चीज़ से मतलब रखते हैं और बंदर उनके मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है। कहानी के मुख्य पात्र गोपाल की बन्दर से दोस्ती हो जाती है। वह मिट्ठू को घर से मटर, चने, केले लाकर खिलाता है। जब बच्चा इतना प्यार कर रहा है, तो भला जानवर क्यों न उससे दोस्ती करें ! मिट्ठू की स्थिति यह है कि वह बिना गोपाल के खिलाये कुछ नहीं खाता था। बच्चों को जहाँ प्यार एवं आत्मीयता की भावना रहती है, वे तत्काल हिल-मिल जाते हैं। जानवर तो स्वामिभक्त होते ही हैं। लेकिन यहाँ दोनों में दोस्ती है और उसका कारण प्रेम है।

गोपाल का मिट्ठू के प्रति इस कदर प्रेम है कि सरकस कंपनी के दूसरे शहर जाने की सूचना पाते ही वह बेचैन हो उठता है और रोने लगता है। अब लड़के का भोलापन तो देखिये-"वह रोता हुआ अपनी माँ के पास आया और बोला–अम्मां, मुझे एक अठन्नी दो, मैं जाकर मिटठू को खरीद लाऊँ। वह न जाने कहाँ चला जायगा। फिर मैं उसे कैसे देखूँगा वह भी मुझे न देखेगा तो रोयेगा।"[41] बालक गोपाल अठन्नी में मिटठू को सरकस वालों से खरीदना चाहता है। वह किसी भी कीमत पर अपने दोस्त को खोना नहीं चाहता। वही उसकी अम्मां व्यस्कों (अभिभावकों) का प्रतिनिधित्व करती हुई उसे समझाती है–"बेटा, बन्दर किसी को प्यार नहीं करता। वह तो बड़ा शैतान होता है, यहाँ आकर सबको काटेगा, मुफ्त में उलाहने सुनने पड़ेंगे।"[42]

यह है बड़ों की दुनिया ! बच्चों की भावनाओं को वे छू तक नहीं पाते। लेकिन कई बार बच्चे जब ठान लेते हैं, तो अपनी बात मनवा के ही छोड़ते हैं। विशेषकर तब, जब यह जिद्द उनके किसी प्रिय चीज के लिए हो। जब उनकी इच्छा पूरी हो जाती है, तो उनका इठलाना देखते ही बनता है। यहाँ भी अम्मा को हार मानना पड़ता है और विवश होकर एक अठन्नी देनी पड़ती है–"अठन्नी पाकर गोपाल मारे खुशी के फूल उठा। उसने अठन्नी को मिट्टी से मलकर खूब चमकाया, फिर मिट्ठू को खरीदने चला।"[43] बच्चे का भोलापन यही नहीं खत्म होता। उसका उत्साह बरकरार है। सरकस में जाकर वह मिट्ठू को बेसब्री से ढूँढ़ने लगता है। तभी अचानक एक चीता उसे घायल करने की कोशिश करता है, लेकिन बीच में मिट्ठू आकर चीते पर झपट पड़ता है। गोपाल की जान बचाने की खातिर मिट्ठू अपनी जान जोखिम में डाल लेता है। यह होती है जानवरों की खुद्दारी। जब तक मिट्ठू की मरहम मट्टी होती रही, गोपाल वहाँ रोज आता और मिट्ठू को रोटियाँ खिलाता। अटूट आस्था, एक अनुपम उदाहरण है। गोपाल अंत-अंत तक मिट्ठू को हमेशा के लिए अपने साथ लाना चाहता है। अंत में गोपाल की कोमल भावनाएँ सरकस के मालिक (जोकि एक बिजनेस मैन है) को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहती और वह मिट्ठू को गोपाल के साथ हमेशा के लिए देने को तैयार हो जाता है, वह भी बग़ैर एक पैसे के। सच्ची मित्रता एवं प्रेम की जीत होती है। मिट्ठू को लेकर गोपाल की कोई लम्बी चौड़ी योजना नहीं है। मालिक के यह पूछने पर कि 'मिट्ठू को पाने के बाद तुम क्या करोगे?' वह भोलेपन में कहता है–"मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगा, उसके साथ-साथ खेलूँगा, उसे अपनी थाली में खिलाऊँगा और क्या।"[44]

गोपाल प्यारा-सा बालक है। वयस्क नहीं है, जो केवल अपने स्वार्थ के लिए जानवरों को पालते हैं, उन्हें खिलाते-पिलाते हैं और अपनी सुख-सुविधा हेतु उनका इस्तेमाल करते हैं। कहानी का अंत बड़ा सुंदर है। बच्चों को जब बांछित वस्तु मिल जाती है, तो उन्हें लगता है, जैसे कोई खज़ाना हाथ आ गया हो। गोपाल की दशा भी कुछ ऐसी ही है–"गोपाल को जैसे कोई राज मिल गया, उसने मिट्ठू को गोद में उठा लिया, पर मिट्ठू नीचे कूद पड़ा और उसके पीछे-पीछे चलने लगा। दोनों खेलते-कूदते घर पहुँच गये।"[45]

कहानी शुरू से लेकर अंत तक बाँधे रखती है और रोचकता में कहीं कोई कमी नहीं आई है। यद्यपि इसमें 'रंज' 'रंजिदा' जैसे उर्दू शब्द भी आए हैं। इस प्रकार यह कहानी नन्हें पाठकों के मन में मानवीय सद्गुणों को भरती है और जानवरों के साथ बच्चों का आत्मीय तादात्म्य स्थापित करती है।

सांप का मणि

'सांप का मणि' कुछ अलग किस्म की कहानी है। लेखक ने इसे आम कहानी की तरह लिखा है। ऐसा नहीं लगता कि वह बच्चों के लिए यह सब लिख रहा है। बावजूद इसके, कहानी की भाषा कठिन नहीं है और बच्चे इसे ग्रहण कर सकते हैं।

यह कहानी इस मायने में महत्वपूर्ण है कि एक तो इसमें साँप के मणि के बारे में जानकारी दी गई है और मणि प्राप्त करने का सजीव वर्णन भी है। दूसरा मणि के बारे में प्रचलित कई भ्रमों एवं सामाजिक अंधविश्वासों का पर्दाफाश करने में भी यह कहानी सफल है। अक्सर लोग मणि को बेशकीमती एवं दुर्लभ चीज समझते हैं। कहानी यह बताती है कि "यह एक किस्म का पत्थर है, जो गर्म होकर अंधेरे में जलने लगता है। जब तक वह ठंडा नहीं हो जाता, वह इसी तरह रोशन रहता है। साँप इसे दिन भर अपने मुँह में रखता है, ताकि यह गर्म रहे। रात को वह इसे लेकर किसी जंगल में निकलता है और इसकी रोशनी में कीड़े-मकौड़े पकड़कर खाता है।"[46]

बनमानुष खानसामा

इस संग्रह में वनमानुष की दो कहानियाँ हैं–बनमानुष की दर्दनाक कहानी' एवं **'बनमानुष खानसामा'**। **'बनमानुष खानसामा'** का वनमानुष भी प्रेमचंद के दूसरे जानवर-पात्रों की तरह बहादुर, स्वामिभक्त एवं बुद्धिमान है। वह एक सरकस के मालिक का खास सहयोगी है। मालिक के इकलौते बच्चे की देखभाल वनमानुष ही करता है। उसका नाम डिक है। मालिक के यहाँ कुछ आलसी एवं शैतान नौकर हैं। अपनी लापरवाहियों एवं कर्त्तव्यहीनता के कारण वे तीनों मालिक द्वारा निकाल दिए जाते हैं। यही मालिक से दुश्मनी का कारण बनता है।

एक बार डिक बच्चे को उसकी छोटी गाड़ी पर बैठाकर घुमाने निकलता है, तो तमंचा के बल पर तीनों बदमाश बच्चे को लेकर भाग खड़े होते हैं। डिक उस अप्रत्याशित घटना पर रोने-चिल्लाने की बजाय बुद्धिमानी से काम लेता है। उसकी सूझबूझ यहाँ ग़ौर करने लायक है–"उसने सोचा कि अगर इस वक्त रोकता हूँ तो मेरी भी जान जायेगी और बच्चे की भी। वह चुपचाप वहीं खड़ा रहा। जब वे तीनों बच्चे को लेकर कुछ दूर निकल गये, तो वह एक पेड़ पर चढ़ गया कि देखें यह सब क्या करते हैं? वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं; डिक भी एक से दूसरे पेड़ पर और दूसरे से तीसरे पेड़ पर कूद-कूदकर उनका पीछा करता जाता था।"[47] डिक ने अपने बनमानुष होने का लाभ उठाया। आगे जाकर बदमाश बच्चे को रेलगाड़ी की पटरियों के बीच लकड़ी पर लिटाकर हाथ-पाँव बाँध देते हैं। प्रेमचंद की वर्णन शैली का एक सुन्दर नमूना यहाँ

प्रस्तुत होता है। बालमन स्वयं इस दृश्य को को पढ़ने के बाद परेशान हो उठेगा–"अरे रे रे ! यह तो ग़ज़ब हुआ। वह दूर से गाड़ी चली आ रही है। बच्चे की जान अब कैसे बचेगी? अब क्या उपाय है। अगर डिक बच्चे के पास जाता है, तो शायद उसे तीनों शैतान देख लें और तमंचे से मार डालें? ज़्यादा सोचने का मौका न था।''[48]

पाठकों की उत्सुकता यहाँ चरम् पर पहुँच जाती है। अब आगे क्या होगा? क्या बच्चा कुचलकर मर जाएगा? या कोई और चमत्कार होगा? डिक यहाँ एक और बहुत बड़ी समझदारी का काम करता है–"थोड़ी ही दूर पर प्वाइंट सिगनल था, इसके सिवा कोई दूसरा उपाय न था। डिक को सिगनल की क्रिया मालूम थी। उसने पहले कई बार आदमियों को गाड़ी को एक पटरी से दूसरी पर लाते देखा था।''[49] डिक महज एक बनमानुष है, लेकिन उसकी बुद्धि इतनी सक्रिय थी कि उसने सिगनल-प्रक्रिया तक को समझ लिया था। बच्चे की जान बच जाती है। डिक बच्चे को लेकर सरकस की ओर दौड़ा, लेकिन सरकस के पास आते ही, पीछा कर रहे बदमाशों ने उसे पीछे से गाली मार दी, अन्ततः डिक तो मर गया, लेकिन बच्चा सुरक्षित बच गया। उसने अपनी वफादारी का फर्ज़ निभा दिया।

प्रेमचंद के यहाँ मरने की जल्दी रहती है। डिक के साथ बाल पाठकों की गहरी सहानुभूति जुड़ जाती है, वह उनका सच्चा नायक बन के उभरता है। लेकिन प्रेमचंद फर्ज की बलिवेदी पर उसका अन्त करवा देते हैं, जबकि घायल अवस्था में उसका इलाज भी हो सकता था। क्या बिना जान दिए नमक का हक अदा नहीं हो सकता? लेकिन बदमाशों को अंत में पकड़वाकर लेखक ने बाल पाठकों के मन की बात की है। बाल हृदय ऐसे बदमाशों के प्रति बड़ा गुसैल एवं सख्त रवैया रखता है। उन्हें सजा दिलवाये बिना उन्हें चैन नहीं रहता। कई बार जब बच्चों को कोई थप्पड़ मार देता है या डाँट देता है, उस आदमी को बच्चों के सामने जब दूसरा बड़ा आदमी झूठ-मूठ में ही थप्पड़ मारकर डाँट देता है, तो बच्चे शांत हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि दोषी को सजा मिल गई।

कहानी के अंत में पुलिस के लिए 'सरकार के आदमी' शब्द-युग्म का सुन्दर प्रयोग हुआ है और जो सर्वथा बालकों के मनोनुकूल है। कहानी के शीर्षक में 'खान सामा' शब्द थोड़ा दुरूह है, बीच में रूखसत शब्द भी सरल नहीं है। बहरहाल कहानी की भाषा सहज एवं सामान्य हैं तथा यह बच्चों के लिए 'प्रेरणास्पद कहानी' का दर्जा पाने योग्य है।

पालतू भालू

'पालतू भालू' कहानी में एक मदारी अपने भालू की बदौलत एक बनिए को डाकुओं से

बचाता है। बनिया ज़मींदार का करिन्दा है और आसामियों से पैसे वसूलकर वापस अपने गाँव जा रहा था। दो मल्लाह अपने नाव से नदी पार कराते हैं। उसकी नियत बिगड़ जाती है और वे नाव को जाकर डाकुओं वाले इलाके में रोकते हैं। उसी नाव में एक मदारी भी अपने भालू के साथ बैठा था। उसे इनकी साजिश की भनक लग जाती है।

कहानी में असली कमाल भालू का है। भालू नहीं रहता तो मदारी और बनिया दोनों मिलकर कुछनहीं कर पाते। वैसे ही बनिया डर के मारे बच्चों की तरह रोने लगता था। मदारी का भालू प्रशिक्षित तो था ही, मालिक का इशारा पाते ही वह डाकुओं पर टूट पड़ा–"भालू ने लपककर एक डाकू को पकड़ा और छोड़ उसके मुँह पर ऐसा पंजा मारा क सारा मुँह लहू-लुहान हो गया। उसे कर दूसरे डाकू पर लपका। डाकुओं में भगदड़ पड़ गयी। सबके सब अपनी-अपनी जान लेकर भागे।''[50] बनिया की जान बच गई और रुपये भी। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि इसके लिए मदारी के प्रति कृतज्ञता जाहिर करता है। मदारी भी अपने भालू को शाबाशी नहीं देता। जबकि इस संघर्ष में विजय का सारा दारोमदार तो भालू के ऊपर है। यद्यपि शीर्षक से भी यह स्पष्ट है कि कहानी के केन्द्र में भालू ही है। बहरहाल, नन्हें दोस्तों का मन भालू के साहस एवं वफादारी की प्रशंसा करते नहीं थकेगा। कहानी बच्चों के मन लायक है।

जुड़वां भाई

'**जुड़वा भाई**' पुराने ज़माने की 'दादी-नानी टाइप' कहानियों की तर्ज़ पर लिखी गई है। ऐसी कहानियों में राजा जंगल में शिकार खेलने ज़रूर जाता है और उसे प्यास भी लगती है। फिर वहाँ कोई घटना घटती है। इस कहानी में भी कुछ वैसा ही होता है। अपने पति की मार-पिटाई एवं बुरे बर्ताव से तंग आकर एक औरत जंगल में भाग जाती है। वहाँ उसे जुड़वा लड़के पैदा होते हैं। एक बार सोते समय एक भालू आकर उसके एक बच्चे को उठा ले जाता है। उसे खोजने के चक्कर में दूसरा बच्चा भी गायब हो जाता है। अब, जैसाकि प्रेमचंद की कहानियों में यह आम बात होती है, औरत दूसरे ही दिन मर जाती है। दूसरे बच्चे को शिकार खेलने आये राजा उठा लाते हैं। आगे चलकर लड़का राजा बनता है और यह भी शिकार खेलने जाता है। वहाँ इसकी मुठभेड़ भालू द्वारा उठा ले गए लड़के से होती है। वह मनुष्य तो है पर भालू जैसा लगता है। लड़ाई में घायल होने पर राजा उसे घर लाता है और कुछ दिनों यहाँ रहते-रहते वह सामान्य आदमी की तरह हो जाता है, 'देखने वालों को अचम्भा होता था कि इस जंगली आदमी की सूरत राजा साहब से इतनी मिलती है, मगर यह किसे मालूम था कि वह राजा साहब का जुड़वां भाई है, जिसे भालू उठा ले गया।''[51] प्रेमचंद ने इसे बच्चों को सुनाने के अन्दाज में लिखी है, "अब दूसरे लड़के का हाल

सुनो।''[52] कहानी में ससपेंस, रोमांच, कौतूहल सब कुछ है, जो बच्चों के काम की चीज है और इसे वह चाव से सुनते-पढ़ते हैं।

कहानी ग्रामीण परिवेश से शुरू होती है, जहाँ औरतों की बात-बात पर पति पीटा करते हैं। बच्चे ऐसी घटनाओं से अछूत नहीं रह पाते। प्रेमंचद बच्चों के मन में अभी से इसके प्रति चेतना भरना चाहते हैं। वे ऐसे पुरुषों को मूर्ख की संज्ञा देते हैं–"कभी-कभी मूर्ख मर्द जरा-जरा-सी बात पर औरतों को पीटा करते हैं।''[53]

प्रेमचंद ने अपनी कई कहानियों में बालकों को ऐसी सामाजिक बुराइयों के प्रति आगाह किया है। वे बच्चों को आरम्भ में ही इन बुराइयों के हानि-लाभ की जानकारी दे देते हैं, ताकि उनके बाल पाठक इन सब जड़ताओं से न सिर्फ मुक्त रह सकें, बल्कि उसके खिलाफ लड़ें भी। बाल मनोविज्ञानी वसीली सुखोम्लीन्स्की का मानना है–"बच्चा जो कुछ भी जानता-समझता है, उस सबको अपने दिल से लगाता है। भलाई से उसके हृदय में हर्ष, भय, उत्तेजना और प्रशंसा का भाव उठता है, वे नैतिक सौंदर्य का अनुसरण करना चाहता है; बुराई देखकर उसका हृदय आक्रोश से भर उठता है, वह उसे सह नहीं सकता, उसमें सच्चाई और न्याय के हेतु संघर्ष करने के लिए आत्मिक शक्ति का संचार होता है। बाल-आत्मा को सत्यों का भण्डार मात्र नहीं होना चाहिए।''[54]

इस कहानी में बच्चे समाजशास्त्र के एक सिद्धांत से भी परिचित हो जाते हैं कि जो जिस परिवेश में रहेगा, वैसा ही बन जाएगा। राजा के साथ जाने वाला लड़का आगे चलकर राजा बन जाता है, जबकि भालू के साथ गया लड़का भालूओं जैसी हरकतें करता है। भालू के बीच पल रहे लड़के के बारे में पढ़कर बच्चे आश्चर्य एवं कौतुहल से तो मरेंगे ही, उन्हें इसमें मज़ा भी आएगा। कहानी की रोचकता में यह प्रसंग खास ही वृद्धि करता है।

'जंगल की कहानियाँ' में संकलित शेष कथाओं में **'बनमानुष की दर्दनाक कहानी'**, **'दक्षिणी अफ्रीका में शेर का शिकार'** **'बाघ की खाल'**, तथा **'मगर का शिकार'** विशुद्ध शिकार-कथाएँ हैं। इन कहानियों में बंदूक गोली, चित्कार, कराह और खून के वर्णन भरे पड़े हैं। प्रेमचंद ने बच्चों के लिए ऐसी कहानियाँ क्यों लिखी हैं, यह थोड़ा समझ से परे है।

वनमानुष की दर्दनाक कहानी

'बनमानुष की दर्दनाक कहानी' का शीर्षक पढ़ते ही दिल में दर्द-सा होने लगता है। कहानी की शुरूआत बनमानुष के बारे में जानकारी देती हुई बच्चों को संबोधित हैं–"आज हम तुम्हें एक बनमानुष का हाल सुनाते हैं। सामने जो तस्वीर है, उससे तुम्हें मालूम होगा कि बनमानुष न तो

पूरा बन्दर है, न पूरा आदमी। वह आदमी और बन्दर के बीच में एक जानवर है। मगर वह बड़ा बलवान होता है और आदमियों को बड़ी आसानी से मार डालता है। वह अधिकतर अफ्रीका के जंगल में पाया जाता है।''[55] कहानी में बनमानुष का एक जोड़ा है, जिसमें मादा बनमानुष को उबांशी जाति के एक आदमी ने मार डाला। अब नर बनमानुष अपने साथी की लाश को लिए जंगल में घूमता है और तड़पता रहता है। वह इस अपराध की सजा के लिए उबांशी जाति के लोगों को चुन-चुन कर मारता है। शिकारियों का एक दल उसे मारने के लिए तैयार हो जाता है। अन्त में बनमानुष को बेरहमी से मार दिया जाता है।

पूरी कहानी में डर सनसनी और जुगुप्सा बनी रहती है। नर बनमानुष अपने साथी की लाश लेकर छाती पीट-पीट कर रोता है। उसके आँसुओं के लिए आदमी ही जिम्मेदार हैं। लेखक वनमानुष की ओर से लिखता भी है–"वनमानुष उस लाश पर झुका हुआ अपने दोनों हाथों से छाती पीट-पीट कर रो रहा था। उसके चेहरे से ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह अपने जोड़े से कह रहा हो कि एक बार फिर उठो, चलो यह देश छोड़कर उस देश में जाकर बसें, जहाँ के आदमी इतने निर्दयी, इतने कठोर नहीं है। जब यह देखता था कि उसके इतना समझाने पर भी मादा न तो बोलती है और न हिलती है, तो वह छाती पीट-पीटकर रोने लगता है।''[56] यह देखकर शिकारी का दिल पिघल जाता है, लेकिन अगले ही पल अपने संतरी की लाश देखकर, जो वनमानुष द्वारा मार डाला गया है, शिकारी क्रोध से अंधा हो जाता है। यह कहाँ का न्याय है? कैसी इंसानियत है? बेहतर तो यह होता कि नर बनमानुष को बचाने की कोशिश होती या कोई अन्य उपाय होता।

बहरहाल, कहानी की भाषा, शैली एवं कथ्य कुछ भी बच्चों के योग्य नहीं है।

दक्षिण अफ्रीका में शेर का शिकार

'**दक्षिण अफ्रीका में शेर का शिकार**' कहानी में बस्ती में अपने बच्चों समेत घुस आई एक शेरनी को मार लेखक डालता है और उसके बच्चों को पालने लगता है। उनमें से एक की मौत हो जाती है, लेकिन दूसरा जिसका नाम जिल था, लेखक के घर में पालतू पशु की तरह रहती है (जिल मादा शेर है)। "जिल अपना नाम समझती और मेरी आवाज पहिचानती थी। मैं जहाँ जाता वहाँ कुत्ते की तरह मेरे पीछे-पीछे चलती। मेरे कमरे में फर्श पर लेटी रहती थी। अक्सर मेरे पैरों पर सो जाती और जगाने के बाद-अपने पंजे मेरे घुटनों पर रखकर बिल्ली की तरह मेरा सिर अपने चेहरे पर मलती।''[57]

एक बार लेखक रात में जिल को साथ लेकर टहलने के लिए निकलता है। आगे एक होटल

नाच का कोई आयोजन चल रहा होता था। वहाँ शेरनी को देखकर भगदड़ मच जाती है। इस घटना का वर्णन बड़ी मज़ेदार और चुटीला है। पहले तो होटल के बाहर खड़े आदमी की हालत खराब हो जाती है, "वह इतना घबराया कि बयान से बाहर है और सामने की तरफ बेतहाशा भागा। उसे भागते देखकर और भी दो-तीन आदमी भाग चले। जिल ने समझा यह भी कोई खेल है, वह भी उनके पीछे-पीछे दौड़ी। हंसते-हंसते मेरे पेट में बल पड़ गये। आखिर मैं भी जिल के पीछे दौड़ा और बड़ी मुश्किल से जिल को पकड़ पाया।"[58] यहाँ जिल ने किसी को घायल नहीं किया। आगे की कथा में जिल के अन्दर का हिंसक जीव जग चुका होता है। वह सड़क के किनारे एक घोड़े को मारकर खाने लगती है। बाद में लेखक घर से बंदूक लाकर उसका काम तमाम कर देता है।

यहाँ कई चीज़ें संदेह पैदा करती हैं। एक तो यह कि जिल लेखक के घर से कैसे निकली? होटल वाली घटना के बाद लेखक जिल को लेकर कभी बाहर नहीं निकला। दूसरी बात, घोड़े को खाते देखकर लेखक अपने जिल को पहचान तक नहीं पाया, जिसने उसे बचपन से पाला था। अपने पालतू पशु को एक झलक में पहचान लेते हैं। एक दिलचस्प बात यह भी है कि लेखक ने यह कोई शिकार नहीं किया है। साथ ही जिल शेर नहीं शेरनी है। फिर इस कहानी का शीर्षक 'दक्षिण **'अफ्रीका में शेर का शिकार'** देने का क्या औचित्य है?

कहानी बच्चों लायक नहीं है। हाँ, थोड़े से अंश का चित्रण अवश्य रोचक है।

बाघ की खाल

'बाघ की खाल' कहानी शिकार-कथा तो नहीं है, क्योंकि यहाँ जान बचाने की खातिर बाघ को मारा जाता है। कहानी के अंत में बाघ को मारने वाले 'शूरवीर' इंजीनियर साहब के लेखक को एक बाघ की खाल भेजते हैं। जिस पर लिखा है, **'यह उसी बाघ की खाल है।'** लेखक लिखता है कि अभी तक वह बाघ की खाल उसके पास मौजूद है।

कहानी सनसनी एवं रोमांच पैदा करने वाली है, लेकिन अफसोस यह है कि यह कहानी बच्चों की पाचन शक्ति के बाहर है।

मगर का शिकार

'मगर का शिकार' में कुछ मछुआरे मगर का शिकार करते हैं। कहानी के पहले अनुच्छेद में बकरी का बच्चा, धुरा, हलाल, खड्ग जैसे शब्द कहानी के बारे में पुर्वानुमान करा जाते हैं। पिछली कहानियों में भी शिकार किया गया, लेकिन इतनी क्रूरता के साथ नहीं। बकरी के बच्चे को न सिर्फ नदी के किनारे पेड़ से बाँध दिया जाता है, बल्कि उसके शरीर पर जोंक लगा दिया जाता

है। बकरी का बच्चा तड़पने लगता है। मगर को मारने के लिए जमीन में चाकू को उल्टा करके गाड़ दिया जाता है, जिसमें उसकी नोंक ऊपर रहती है। बकरी के बच्चे की गरदन पकड़कर जब मगर नदी में वापस लौटता तो चाकू से उसका पेट फट जाता है।

यह है क्रूरता से भरपूर **'मगर का शिकार !'** यह दास्तान प्रेमचंद ने लिखी है, विश्वास नहीं होता; जिन्हें स्वयं जानवरों से इतना प्रेम है। ऊपर से यह कहानी इस संकलन में रख दी गई है। इतना सब कुछ लिखने के बाद अब यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी कहानी को बच्चों से कोसों दूर रखना चाहिए।

इस प्रकार जंगल की अधिकतर कहानियों में लेखक ने बच्चों को जानवरों के साथ खूब सैर कराया है। इन कहानियों में जानवर चेतनाहीन और मूक प्राणी नहीं है, बल्कि वे मनुष्यों के जीवन-व्यापार के साथ सक्रिय हैं। वे बहादुर हैं, बुद्धिमान हैं और स्वामिभक्त भी। वे अपने कार्यों से बच्चों में साहस भरते हैं, प्रेरित करते हैं और उनके अंदर मानवीय सद्गुणों की भावना जगाते हैं। ये कहानियाँ पशुओं के साथ बच्चों का आत्मीय तादात्म्य स्थापित करती है। कुछ व्यर्थ की कहानियाँ भी इस संकलन में रख दी गई हैं। उन कहानियों को लिखने का औचित्य समझ से बाहर है।

'जंगल की कहानियाँ' में संकलित कहानियों की भाषा एवं शैली बच्चों के लिए बोधगम्य एवं पठनीय है। प्रेमचंद मूलत: उर्दू के भी लेखक इस कारण लगभग हर कहानी में उर्दू के कुछ दुरूह शब्द आए हैं। प्रेमचंद मुहावरों, कहावतों एवं सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग करते हैं। यह आवश्यक भी है कि बालकों को आरंभ से ही इन चीज़ों से परिचित कराता चला जाए।

सन्दर्भ-सूची

1. राष्ट्रीय सहारा 'उमंग' रविवार, 17 जनवरी, 1999, नई दिल्ली।
2. वही
3. हिन्दुस्तान, (लखनऊ संस्करण), 11 नवम्बर, 1998
4. उद्धृत-डॉ० सुरेन्द्र विक्रम, हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्भव और विकास, पृ० सं० 16
5. सं०–कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद विश्व कोश, भाग-दो , पृ० सं० 154-155
6. प्रेमचंद रचनावली, भाग-18, पृ० सं० 195
7. वही, पृ० सं० 195
8. वही, पृ० सं० 195

9. वही, पृ० सं० 196
10. वही, पृ० सं० 196
11. वही, पृ० सं० 196
12. वही, पृ० सं० 197
13. वही, पृ० सं० 196
14. वही, पृ० सं० 196
15. वही, पृ० सं० 196
16. वही, पृ० सं० 196
17. वही, पृ० सं० 195
18. वही, पृं० सं० 201
19. वही, पृ० सं० 202
20. वही, पृ० सं० 202
21. वही, पृ० सं० 202
22. वही, पृ० सं० 202
23. वही, पृ० सं० 202
24. वही, पृ० सं० 202
25. वही, पृ० सं० 202
26. वही, पृ० सं० 203
27. वही, पृ० सं० 203
28. वही, पृ० सं० 203
29. वही, पृ० सं० 203
30. वही, पृ० सं० 203
31. वही, पृ० सं० 202
32. वही, पृ० सं० 203
33. वही, पृ० सं० 203
34. वही, पृ० सं० 204
35. वही, पृ० सं० 204
36. वही, पृ० सं० 204
37. वही, पृ० सं० 204
38. वही, पृ० सं० 204-205

39. वही, पृ० सं० 208
40. वही, पृ० सं० 208
41. वही, पृ० सं० 208
42. वही, पृ० सं० 208-209
43. वही, पृ० सं० 209
44. वही, पृ० सं० 209
45. वही, पृ० सं० 209
46. वही, पृ० सं० 207
47. वही, पृ० सं० 207
48. वही, पृ० सं० 207
49. वही, पृ० सं० 207-208
50. वही, पृ० सं० 211
51. वही, पृ० सं० 216
52. वही, पृ० सं० 215
53. वही, पृ० सं० 214
54. वसीली सुखोम्लीन्स्की : बालहृदय की गहराइयाँ, पृ० सं० 280
55. वही, पृ० सं० 197
56. वही, पृ० सं० 199
57. वही, पृ० सं० 200
58. वही, पृ० सं० 201

सैलानी बंदर

'सैलानी' का अर्थ होता है, **'घुमक्कड़'**, **'मनमौजी'**। **'सैलानी बंदर'** एक ऐसे ही बंदर मन्नू की मनोरंजक कहानी है। शुरू में मन्नू स्वेच्छा से सैर सपाटे के लिए निकलता है, लेकिन एक गलती उसके लिए काफी महँगी सिद्ध होती है और बाद में परिस्थितियाँ उसे यहाँ से वहाँ सैर कराती हैं। इस दौरान उसे काफी कष्ट भी उठाना पड़ता है। **'सैलानी बंदर'** का कथानक कुछ इस प्रकार है–

जीवनदास मदारी है और 'मन्नू' उसका बंदर। 'बुधिया' जीवनदास की पत्नी है। दोनों निसंतान हैं और मन्नू को संतान की तरह प्यार करते हैं। मन्नू ही उनकी आजीविका का एकमात्र सहारा है। एक दिन 'मन्नू' एक बगीचे में पहुँचकर खूब फल तोड़कर खाता है और जमकर उधम मचाता है। उसकी इस शरारत की वजह से वह बगीचे के मालिक के यहाँ कैद कर लिया जाता है। गरीबदास और बुधिया के लाख आग्रह के बावजूद बगीचे का मालिक मन्नू को वापस नहीं करता है। वह उसे एक सरकस वाले के हाथों बेच देता है। मन्नू पर अब भारी मुसीबत आ जाती है। उसे सरकस में कई तरह के कष्ट झेलने पड़ते हैं। आखिर एक दिन सरकस में आग लगने पर मन्नू वहाँ से भाग खड़ा होता है। लेकिन जब वह अपने पुराने घर पहुँचता है तो वहाँ उसे कोई नहीं मिलता है। वह वहीं रहने लगता है। कुछ महीने बाद उसे पागल की हालत में बुधिया मिलती है। एक बार फिर मन्नू और बुधिया दोनों वहाँ रहने लगते हैं। 'जीवनदास' पहले ही मर चुका होता है। 'मन्नू' अकेला 'बुधिया' का जीविकोपार्जन करता है।

इस कहानी में बंदर का स्वच्छंद एवं शरारती चरित्र उभरकर तो आया ही है, इसके साथ-साथ बंदर मन्नू एक वफादार सहयोगी के रूप में 'गरीबदास' एवं 'बुधिया' के लिए उपस्थित है। कहानी के केन्द्र में बंदर है, इसलिए ज़्यादातर तो उसके कार्य-व्यापार का ही चित्रण है; लेकिन कहानी में जहाँ-तहाँ बच्चे भी उपस्थित हैं, अपने अलग संसार के साथ।

'मन्नू' गरीबदास और बुनिया के जीवन का आधार है। इस नि:संतान दम्पत्ति के लिए 'मन्नू' ही उनकी संतान है। दोनों उसका कितना ख्याल रखते हैं, जैसे वह उनका बेटा हो। 'मन्नू' किसी पालतू पशु की तरह नहीं बल्कि पूरे ठाट के साथ रहता है। "जीवनदास उसके लिए एक गेंद लाया था। मन्नू आँगन में गेंद खेला करता था। उसके भोजन करने का मिट्टी का एक प्याला था, ओढ़ने को कंबल का एक टुकड़ा, सोने को एक बोरिया और उचकने के लिए छप्पर में एक रस्सी। मन्नू इन वस्तुओं पर जान देता था। जब तक उसके प्याले में कोई चीज़ न रख दी

जाए वह भोजन न करता था। अपना ठाट और कंबल का टुकड़ा उसे शाल और गद्दे से भी प्यारा था। उसके दिन बड़े सुख से बीतते थे।''[1]

मदारी वाले बंदर के तरह-तरह के खेल दिखाते हैं। ऊपर से मन्नू जब मदारी का पारिवारिक सदस्य है, फिर तो वह कुशल अभिनेता की तरह अभिनय करता है और ढेरों पैसे बटोरता है। "वह नकलें करने में इतना निपुण था कि दर्शकवृंद हमेशा देखकर मुग्ध हो जाते थे। लकड़ी हाथ में लेकर वृद्धों की भांति चलता, आसान मारकर पूजा करता, तिलक-मुद्रा लगाता, फिर पोथी बगल में दबाकर पाठ करने चलता। ढोल बजाकर गाने की नकल इतनी मनोहर थी कि दर्शक लोग लोट-पोट हो जाते थे। तमाशा खत्म हो जाने पर वह सबको सलाम करता था; लोगों के पैर पकड़कर पैसे वसूल करता था। मन्नू का कटोरा पैसों से भर जाता था।''[2] बंदर का खेल हो और बच्चे रुचि न लें, यह भला कैसे संभव है! बच्चे तो बंदर को देखते ही हल्ला मचाने लगते हैं। यहाँ तो खेल दिखाने वाला बंदर है–"लड़कों का तो उसे देखने से जी ही न भरता था। वे अपने-अपने घर से दौड़-दौड़कर रोटियाँ लाते और उसे खिलाते थे।''[3]

जानवर स्वच्छंद प्रवृत्ति के होते हैं। जंगल में उनका अपना राज होता है, अपनी दुनिया होती है। यह तो मनुष्य है, जो अपनी सुविधा एवं लाभ के लिए पशुओं को पालता है; उनसे काम लेता है। यद्यपि एक पक्ष यह भी है कि जानवर मनुष्य के सहयोगी एवं साथी भी रहे हैं। बहरहाल मन्नू मनमौजी एवं घुमक्कड़ है। फलों से भरे एक बगीचे को देखकर मन्नू का बंदर सुलभ मन अपने को रोक नहीं पाया और मन्नू वहाँ पहुँच गया। प्रेमचंद यहाँ एक गम्भीर टिप्पणी करते हैं और मनुष्य की स्वार्थपरकता की कलई खोल देते हैं। "पेड़ों पर चढ़कर फल खाना उसको स्वाभाविक जान पड़ता था। यह न जानता था कि वहाँ प्राकृतिक वस्तुओं पर भी किसी न किसी की छाप लगी हुई है, जल, वायु और प्रकाश पर भी लोगों ने अधिकार जमा रखा है, फिर बाग-बगीचों का तो कहना ही क्या।''[4]

यह इस संसार की विडंबना है कि प्रकृति पर मुक्त पशु-पक्षियों का जो वाजिब हक है, उस पर भी मनुष्यों ने कब्जा जमा रखा है। बगीचे में पहुँचते ही मन्नू की बाँछें खिल आईं। "आंवले, कटहल, लीची, आम, पपीते वगैरह लटकते देखकर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। मानो वे वृक्ष उसे अपनी ओर बुला रहे थे कि खाओ, जहाँ तक खाया जाए, यहाँ किसी की रोक-टोक नहीं है।''[5] मन्नू है तो बंदर और बंदर का स्वभाव कैसा। जब बगीचे में पहुँच गए तो भला एक जगह स्थिर रहकर प्रेम से फल थोड़े ही खाना है, कुछ तो उधम-चौकड़ी होनी ही चाहिए। प्रेमचंद ने उसका

स्वाभाविक चित्रण किया है और यह दृश्य बच्चों के लिए दिलचस्पी भरा है। "एक छलांग मारकर वह चहारदीवारी पर चढ़ गया। दूसरी छलांग में पेड़ों पर जा पहुँचा। कुछ आम खाए, कुछ लीचियाँ खाईं। खुश हो-होकर गुठलियाँ इधर-उधर फेंकना शुरू किया। फिर सबसे ऊँची डाल पर जा पहुँचा और डालियों को हिलाने लगा। पके आम जमीन पर बिछ गए। खड़खड़ाहट हुई तो माली दोपहर की नींद से चौंका और मन्नू को देखते ही उसे पत्थरों से मारने लगा। पर या तो पत्थर उसके पास तक पहुँचते ही न थे या वह सिर और शरीर हिलाकर पत्थरों को बचा जाता था। बीच-बीच में बागवान को दाँत निकालकर डराता भी था। कभी मुँह बनाकर उसे काटने की धमकी भी देता था।"[6] इसके बाद बगीचे का मालिक उसे बन्दूक का भय दिखाकर पकड़ लेता है और घर लाकर एक खंभे से बाँध देता है। यहीं से उसकी स्वच्छंदता का अंत हो जाता है और संघर्ष भरी कहानी शुरू होती है।

कई जानवरों को एक दूसरे से खास ही दुश्मनी होती है। पता नहीं यह तनातनी कब से चली आ रही है। कुत्ते बिल्ली को देखते ही काट खाने को दौड़ते हैं। यहाँ मन्नू के लिए कुत्ते जानी दुश्मन की तरह हैं। "मन्नू को अगर चिढ़ थी तो कुत्तों से। उसके मारे उधर से कोई कुत्ता न निकलने पाता था और अगर कोई आ जाता, तो मन्नू उसे अवश्य ही दो-चार कनेठियां और झापड़ लगाता था।"[7] खंभे से बंधा मन्नू मजबूर है और साहब का कुत्ता बंदर को इस हालात में पाकर उसे आंतकित करने में लगा है। आज गेंद उसके पाले में है। लेकिन अंदर ही अंदर उसे मन्नू का डर भी है। "साहब का कुत्ता टामी बार-बार डराता और भूँकता था। मन्नू को उस पर ऐसा क्रोध आता था कि पाऊँ तो मारे चपतों के चौंधिया दूँ, पर कुत्ता निकट न आता, दूर ही से गरजकर रह जाता था।"[8]

लेकिन धीरे-धीरे टामी ने भी मन्नू की विवशता समझ ली। ऊपर से वह घर का रखवाला था, साहब का दुलारा भी। दूसरी बात मन्नू को भी पुराना गरूर था। लेकिन जो होना था, वह तो हुआ ही। "टामी ने देखा, मन्नू कुछ बोलता नहीं, तो शेर हो गया। भूँकता-भूँकता मन्नू के कान पकड़ लिए और इतने तमाचे लगाये कि उसे छठी का दूध याद आ गया।"[9]

यह तो हुई विजातीय पशुओं में परस्पर बैर-भाव की स्थिति। लेकिन सजातीय जानवर भी कभी-कभी एक-दूसरे के साथ कुत्तों की तरह पेश आते हैं। इसके पीछे कई तरह के कारण हैं। एक कारण मैं **'पागल हाथी'** की चर्चा के दौरान बता चुका हूँ। **'कुत्ते की कहानी'** में कथानायक कुत्ता अपनी जाति की इस प्रवृत्ति से पीड़ा एवं क्षोभ का अनुभव करता है–"मैंने अपनी जाति में यह बहुत

बड़ा ऐब देखा है कि एक-दूसरे को देखकर ऐसा काट खाने को दौड़ता है, गोया उसका जानी दुश्मन हो। कभी-कभी अपने उजड्ड भाइयों को देखकर मुझे क्रोध आ जाता है, पर मैं सहन कर लेता हूँ।''[10]

यहाँ स्थिति कुछ भिन्न है। मन्नू जब सरकस में जाता है; तो वहाँ के बंदरों की स्थिति घोर दयनीय है। उन्हें रखवाला खूब कष्ट देता है। उनके हिस्से का खाना खुद खा लेता है। बंदर पहले से ही भूख से त्रप्त हैं; ऊपर से मन्नू के आने से उन्हें लगा कि उनके भोजन में एक और हिस्सेदार आ गया। इसी कारण, "बंदरों ने मन्नू का सहर्ष स्वागत नहीं किया। उसके आने से उनमें बड़ा कोलाहल मचा। अगर रखवाले ने उसे अलग न कर दिया होता तो वे सब उसे नोचकर खा जाते।''[11] इसके पीछे बन्दरों की करुण दशा, विवशता एवं भूख थी, जिसने उन्हें अपने ही एक भाई के साथ ऐसा व्यवहार करने को विवश किया। प्रेमचंद बालमन को कुरेदकर सोचने पर विवश करते हैं।

जानवरों को लोग दो तरह से पालतू बनाकर रखते हैं। एक तो प्यार से, दूसरे सख्ती से गुलाम बनाकर। इस कहानी में प्रेमचंद ने इस तथ्य को कुशलता से प्रस्तुत किया है। गरीबदास के यहाँ मन्नू एक इशारे पर सब कुछ करने को तैयार हैं। यहाँ तक कि बुधिया के सिर की जुएँ भी निकालता है। मन्नू को खेजते हुए गरीबदास जब बगीचे के मालिक के यहाँ पहुँचता है तो "मन्नू उसे देखते ही ऐसा अधीर हुआ, मानो जंजीर तोड़ डालेगा, खंभे को गिरा देगा।''[12] बुधिया वहाँ पहुँचती है तो "मन्नू अबकी इतने जोर से उछला कि खंभा हिल उठा।''[13]

मन्नू वहाँ भूख और पीड़ा में था, इसके बावजूद उसमें इतनी ताकत आ गई। जानवर स्नेह के लिए जान देने में तनिक भी मोह नहीं करते। **'जंगल की कहानियाँ'** में हम ऐसी स्थितियाँ देख चुके हैं। सरकस में मन्नू की स्थिति यह है कि वह बार-बार वहाँ से भागने की ही जुगत भिड़ाता रहता है। प्रेमचंद ने इन प्रसंगों में आजादी और गुलामी की अवधारणा को भी सरलता से रखा है। ताकि बाल समुदाय इसके मर्म को समझ सके। ध्यान देने योग्य है कि प्रेमचंद जिस समय यह कहानी लिख रहे थे, तब देश गुलाम था। प्रेमचंद ने देश के नौनिहालों तक में यह बात डालने की कोशिश की है। **"दो बैलों की कथा''** कहानी में भी यही ध्वनि मुखरित हुई है।

'सैलानी बंदर' में बच्चों की धमाकेदार उपस्थिति है। लेकिन वे बच्चे, उधमी, शरारती और मस्तमौला हैं। बगीचे में जब मन्नू धमा-चौकड़ी मचा रहा था, नीचे माली उसे पत्थर मारता था, तभी बच्चे जमा हो गए। जब इतने सारे बच्चे हों, बंदर हो और यह दिलचस्प दृश्य हो तो भला

उनकी सृजनात्मक कैसे संभले! बच्चों का सामूहिक गायन शुरू हो गया–

"ओ बंदरवा लोलयाय,

बाल उखाडूं टोयटाय।

ओ बंदर तेरा मुँह है लाल,

पिचके-पिचके तेरे गाल।

मर गई नानी बंदर की,

टूटी टांग मुछंदर की।"[14]

पता नहीं यह किस कवि की रचित पंक्तियाँ थीं? लेकिन बच्चों के पास इस तरह के गानों का खास ही 'स्टॉक' होता है, जिसे वे अवसर विशेष पर गाते हैं। **'रूहे-स्याह** (कलुषित आत्मा)' कहानी में साल भर से पानी नहीं बरसने पर पूरी जनता परेशान है। सब लोग पानी बरसने के लिए तरह-तरह के उपाय करने में लगे हैं। बच्चों की नंग-धड़ंग टोली बाज़ारों में घूम-घूमकर गा रही है–

"काल-कलूटी उजली धोती

मेघा-दादा पानी दो।"[15]

पशुओं को भी बच्चों से प्रेम होता है। अब मन्नू ने बच्चों के साथ खुद भी मज़ा लेना शुरू किया–"मन्नू को इस शोरगुल में बड़ा आनन्द आ रहा था। वह आधे फल खा-खाकर नीचे गिराता था और लड़के लपक-लपककर चुन लेते और तालियाँ बजा-बजाकर कहते थे–

बंदर मामू और,

कहाँ तुम्हारा ठौर।"[16]

मन्नू बगीचे के मालिक के यहाँ कैद है। वहाँ उसे तरह-तरह के कष्ट मिलते हैं। इसी में बच्चे भी शामिल हैं। यह शरारती बच्चों का प्रिय शगल है। मन्नू को चिढ़ाने-सताने में उन्हें खूब मज़ा आ रहा है। जब मालिक मन्नू की तीन ठोकरें जमाकर चले गए तो–"नटखट लड़कों की बारी आई। कुछ घर के और कुछ बाहर के लड़के जमा हो गए। कोई मन्नू को मुँह चिढ़ाता, कोई उस पर पत्थर फेंकता और कोई उसको मिठाई दिखाकर ललचाता था। कोई उसका रक्षक न था, किसी को उस पर दया न आती थी। आत्मरक्षा की जितनी क्रियाएँ उसे मालूम थीं, सब करके हार गया प्रणाम किया, पूजा-पाठ किया लेकिन इसका उपहार यही मिला कि लड़कों ने उसे और दिक

करना शुरू किया।''[17] शरारती लड़कों का अपना एक 'गैंग' होता है, जो एक साथ किसी अभियान में जुटता है। पागलों को तंग करने, उन पर पत्थर फेंकने तक में ऐसे उद्यमी बच्चे पीछे नहीं रहते।

मन्नू के वियोग में बुधिया पागल हो जाती है। अपने गाँव में वह नंगे-बदन उजाड़ वेश-भूषा में घूमती रहती है। उसी बुधिया के बंदर के साथ जो बच्चे पहले खेला करते थे, आज उस पर पत्थर फेंकते हैं। और 'पगली नानी' कहकर उसे चिढ़ाते हैं। इसके बाद बुधिया बैठ जाती है और लड़कों से उसका सवाल-जवाब शुरू हो जाता है। लड़के बुधिया को पागल सिद्ध करने के लिए एक से एक तर्क गढ़ते हैं, बुधिया उन्हें काटती जाती है। लेकिन बच्चों के मन में प्रश्नों की कमी नहीं होती, वे बुधिया पर दनादन सवाल दागते हैं। लड़कों के अटपटे-चटपटे प्रश्न गौर करने लायक हैं। जैसे–"तू कपड़े क्यों नहीं पहनती? तू पागल नहीं तो और क्या है? तुझे जो कोई जो कुछ दे देता है, उसे तू खा लेती है। तू पागल नहीं तो और क्या है? तुझे कुछ विचार नहीं है किसी के हाथ की चीज़ खाते घिन नहीं आती? तुझे क्रोध क्यों नहीं आता?''[18]

प्रेमचंद को पता था कि बच्चों में जिज्ञासाओं का अंत नहीं है। इस वार्त्तालाप से यह भी पता चल जाता है कि बच्चे कितने हाजिर जवाबी होते हैं। घर में तो वे एक से प्रश्न करते हैं और बहस में हिस्सा भी लेना चाहते हैं, लेकिन परिवार में बच्चों की हर बात 'बचकानी' मानकर टाल दिया जाता है। बड़े यह सोचने तक की जहमत नहीं उठाते कि बच्चों के अंदर भी एक गहरी सूझ होती है। उनकी अनगढ़ता एवं कच्चेपन में एक सुगढ़ता एवं परिपक्वता होती है।

इस वार्त्तालाप में दो और उल्लेखनीय बाते हैं। एक जगह तो प्रेमचंद बच्चों की ओर से स्वयं बोलने लगते हैं। ऐसी स्थिति उनकी अन्य कहानियों में भी मिलती है। प्रश्न पूछते-पूछते बच्चे बड़े हो जाते हैं–

"लड़का – और लोग क्या करते हैं? पैसे-रुपये का लालच सभी को होता है।''

x x x x x x x x

लड़का – इसी से तो तुझे पगली नानी कहते हैं। तुझे न लोभ है न, घिन है, न विचार है, न लाज है। ऐसों ही को पागल कहते हैं।''[19]

बच्चों को उनकी समझ के अनुसार उन्हीं की भाषा में बात करने दिया जाए तो स्वाभाविकता बनी रहती है। एक अच्छी बात यहाँ यह है कि लेखक ने इस वार्तालाप में नारी-विमर्श भी डाल दिया है। यह जरूरी है कि बच्चों में आरंभ से ही स्त्री-पुरुष के भेद को खत्म करने की भावना

विकसित की जाए। बच्चों की कहानी में यह प्रश्न उठाकर प्रेमचंद ने अपनी प्रगतिशीलता एवं बाल नागरिकों के प्रति अपनी चिंता को पुष्ट किया है। संवाद कुछ यूँ हैं–

"लड़का – तुझे शर्म नहीं आती?

बुढ़िया – क्या शर्म औरतों के लिए है, मर्दों को नहीं आनी चाहिए।"[20]

मन्नू से मिलने के बाद एकाएक बुधिया को होश आता है और स्वयं पर शर्म भी। हालाँकि यह परिवर्तन पल भर में घटित होता है। उस समय वही लड़के जो पहले उसे चिढ़ा रहे थे, उसी में से एक ने उसे कपड़ा लाकर दिया। यह होते हैं बच्चे! कहानी के अंत में बंदर का पूरी तरह मानवीकरण कर दिया गया है। यह ज़रूरी भी है, क्योंकि मन्नू के साथ आरम्भ से ही नन्हें पाठक संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ चुके हैं और बुधिया के साथ भी उनकी गहरी सहानुभूति है। बुधिया ने मन्नू को सन्तान की तरह पाला-पोसा था। इसी भूमिका को वह अंत में कुशलता के साथ निभाता है और बुधिया के जीने का सहारा बनता है–"आज से मन्नू बुधिया के पास रहने लगा। वह सबेरे घर से निकल जाता और नकलें करके, भीख माँगकर बुधिया के खाने भर को अनाज या रोटियाँ ले आता था। पुत्र भी अगर होता तो वह इतने प्रेम से माता की सेवा न करता। उसकी नकलों से खुश होकर लोग उसे पैसे भी देते थे। उन पैसों से बुधिया खाने की चीज़ें बाज़ार से लाती थी।"[21]

कहानी का अंत सुखांत है, जो बाल पाठकों को शीतल एहसास, इतमीनान एवं खुशी प्रदान करता है। बच्चों की कहानियों में अंत ऐसा होना चाहिए, जिसमें उन्हें सुखानूभूति तो हो ही, प्रेरणा भी मिले एवं उनकी संवेदनाएँ पूर्णत: जागृत हो जाएँ। बाल कहानी तभी सार्थक एवं सफल मानी जा सकती है।

'**सैलानी बंदर**' कहानी में प्रेमचंद कहीं-कहीं शैली की दुरूहता से बच नहीं पाये हैं। बच्चों की कहानी में भाषा, शैली, उपमा, बिम्ब, प्रतीक सब कुछ बालोनुकूल होना चाहिए। लगे कि बच्चे अपनी भाषा में कहानी पढ़ रहे हैं या कहानी में उनका अपना संसार है। जरा इन पंक्तियों को देखा जाए, क्या यह बच्चों के लिए चल सकती हैं। "आपका इकबाल सदा रोशन रहे, इससे भी बड़ा ओहदा मिले, कलम चाक हो, मुददई बेबाक हो। आप हैं सपूत, सदा रहें मजबूत। आपके बेरी को दाबे भूत।"[22] इसी प्रकार "उसके मुख पर अमानुषी आभा थी, उसकी जगह चिंता का पीलापन दिखाई देने लगा।"[23]

नादान दोस्त

प्रसिद्ध रूसी शिक्षाशास्त्री वसीली सुखोम्लीन्स्की ने बालमन की छानबीन करते हुए लिखा है

कि–"जो प्रकृति में सबसे कोमल, सबसे सूक्ष्म और सबसे अधिक संवेदनशील है, और यह है–बाल मस्तिष्क। बाल-मस्तिष्क के बारे में सोचते हुए मुझे गुलाब के फूल का ख़्याल आता है; जिसकी पंखुड़ी पर ओस की बूँद थरथरा रही हैं। कितनी सावधानी, कितनी सतर्कता और प्यार से यह फूल तोड़ना होगा, ताकि ओस की यह बूँद न गिरने पाए।''[24]

"नादान दोस्त'' के बच्चे भी कुछ ऐसे ही हैं। भोले-भाले, प्यारे एवं नादान। बच्चों की सृजनशीलता, कल्पना, जिज्ञासा एवं दयालुता का सुन्दर चित्रण इस कहानी में हुआ है। यह कहानी बच्चों के कोमल भावनाओं की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है। कहानी में **'नादान दोस्त'** की भूमिका में केशव और श्यामा हैं। वे दोनों भाई-बहन हैं। उनके घर में छज्जे के ऊपर चिड़िया ने अंडे दिए हैं। बच्चे उसे लेकर तरह-तरह के सवालों, जिज्ञासाओं एवं कल्पना के संसार में स्वच्छंद विचरण कर रहे हैं। कहीं से समाधान न पाकर आपस में ही सवाल जवाब करते हैं और अंततः अंडे की सुरक्षा व्यवस्था में स्वयं भिड़ जाते हैं। अंडे से निकलने वाले बच्चे के खाने-पीने से लेकर उनके सोते-रहने तक की व्यवस्था की जाती है। लेकिन प्यारे-प्यारे बच्चों का यह रचनात्मक कार्य सफल नहीं हो पाता और अंडे टूटे पाए जाते हैं। चिड़िया ने स्वयं अंडे गिरा दिए हैं। कारण था बच्चों द्वारा अंडे को छू देना। चिड़िया के बच्चों की भलाई करने में नाकाम बच्चे सच्ची दोस्त का फर्ज नहीं निभा पाने के कारण दुखी हो जाते हैं। लेकिन इसमें उनकी क्या गलती? गलती उनकी कोमलता, निश्छलता एवं भोलापन का है। इसीलिए लेखक उन्हें **'नादान दोस्त'** की संज्ञा देता है।

'नादान दोस्त' में बाल मनोविज्ञान के अनेक पहलू जीवंत ढंग से उजागर हुए हैं। बच्चों का अपना संसार होता है। उनकी दुनिया बड़ी निराली होती है। केशव और श्यामा की भी अपनी अनोखी दुनिया है। घर में चिड़िया ने अंडे दिए हैं। इसकी चिंता घर के बड़े-बूढ़ों को नहीं है, जितनी फिक्र इन दोनों महानुभावों को है। चिड़िया के अंडों की रक्षा के लिए दोनों कैसी-कैसी योजनाएँ बनाते हैं। गर्मी के दिन सोने के लिए होते हैं–"अम्मां दोनों बच्चों को कमरे में सुलाकर खुद सो गई थीं। लेकिन बच्चों की आँखों में आज नींद कहाँ? अम्मां जी को बहलाने के लिए दोनों दम रोके आँखें बंद किये मौके का इंतजार कर रहे थे। ज्यों ही मालूम हुआ कि अम्मां जी अच्छी तरह सो गईं, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से दरवाजे की सिटकनी खोलकर बाहर निकल आए।''[25] अम्मां को क्या पता यहाँ कौन सी लीला चल रही है। अम्मां डाँट-डपट करे उन्हें दुबारा सुला देती हैं। अम्मां के दबाव में सोना पड़ा था, लेकिन नींद खुलते ही फिर पुराने अभियान बच्चे में जुट गयी।

अंडे टूट जाने से दोनों बच्चों को घोर पीड़ा हो रही है। श्यामा ने भैया को दोषी बताते हुए अम्मां से दण्ड की सिफारिश कर डाली। केशव स्वयं आत्मग्लानि से भरा हुआ अपराधबोध महसूस कर रहा है। यहाँ तक की कभी-कभी रोता भी है। यही है बालहृदय ! बड़ों के जीवन में रोज ऐसी घटनाएँ होती हैं; वे भूल जाते हैं। लेकिन बालमन के लिए यह घटना एक गहरे आघात की तरह है। निश्चित रूप से प्रेमचंद ने यहाँ नन्हें मन का सूक्ष्म चित्र खींचा है। इस कहानी के अध्ययन के सिलसिले में श्यामा का चरित्र खास ही प्रभावित करता है। कुछ प्रमुख बिन्दुओं की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। चिड़िया के बच्चे एवं अण्डे को लेकर सबसे अधिक चिंता श्यामा को ही है–

"क्यों भैया, बच्चे निकलकर फुर्र से उड़ जाएंगे?''

x x x x x x x x

"बच्चों को क्या खिलाएगी बेचारी?''[26]

केशव स्टूल पर चढ़ा है और श्यामा प्रश्नों की बौछार कर रही है–

"कै बच्चे हैं भइया ?''

x x x x x x

"जरा हमे दिखा दो भैया, कितने बड़े हैं?''[27]

अंडों को देखने के लिए वह व्यग्र हो जाती है, रोती, गिड़गिड़ाती है, अम्मां से कहने की धमकी देती है और यहाँ तक कि सर तुड़वाने की भी परवाह नहीं करती। अंडों के फूटने पर श्यामा को सबसे अधिक बच्चों की चिंता है–

"श्यामा ने पूछा–बच्चे कहाँ उड़ गए भइया?

केशव ने करूण स्वर में कहा–अंडे तो फूट गए।

और बच्चे कहाँ गए?''[28]

वही श्यामा, जिसने चंद घंटे पहले अंडा न दिखाने के एवज में केशव को पिटाई से बचाया था, अंडों के टूटने पर वह बेहद आहत हो जाती है और उसका मन भाई के प्रति रोष से भर उठता है–"अब तो श्यामा को भइया पर जरा भी तरस न आयी। उसी ने शायद अंडों को इस तरह रख दिया कि वह नीचे गिर पड़े। इसकी उसे सजा मिलनी चाहिए।''[29]

श्यामा की यह मनोवृत्ति अकारण नहीं है। **'बाल हृदय की गहराइयाँ'** में वसीली सुखोम्लीन्स्की लिखते हैं–"लड़कियों में लड़कों से अधिक सहृदयता, दयालुता क्यों होती हैं। शायद यह मुझे यों ही

लगता हो? पर नहीं, यह सही है। बालिकाएँ अधिक सहृदय, अधिक संवेदनशील और स्नेही होती हैं। शायद इसका कारण यह है कि उनमें बचपन से ही मातृत्व की अवचेतन भावना होती है। नए जीवन का सृजन कर पाने की अवस्था में पहुँचने से बहुत ही बालिकाओं के हृदय में अवचेतन भावना स्थान बना लेती है कि उसे जीवन की चिंता करनी है, उसकी रक्षा करनी है। नेकी की, सहृदयता की जड़, उसका स्रोत सृजन में तथा जीवन और सौन्दर्य की पुष्टि में ही निहित हैं।''[30]

'नादान दोस्त' में बच्चों का सृजनशील रूप बेमिसाल ढंग से सामने आया है। चिड़िया के अंडे की रखरखाव के लिए दोनों बच्चे कितनी अच्छी व्यवस्था करते हैं। इसमें उनके नन्हें दिमाग का कौशल देखते ही बनता है। धूप से रक्षा के लिए वे घोंसलों के ऊपर टोकरी की छत बनाते हैं, मटके से चावल लाकर रखते हैं, केशव पत्थर की प्याली का तेल चुपके से ज़मीन पर गिराकर उसे खूब साफ करता है और फिर उसमें पानी भरता है (यह चिड़िया के बच्चों के लिए दाना पानी था) कपड़े की गद्दी बनाकर उस पर अंडों को रखते हैं। यह सब करने के लिए उन्हें स्टूल की जरूरत होती है। वह छोटी पड़ गई तो नहाने की चौकी लगाकर उसके ऊपर स्टूल रखकर केशव चढ़ता है। अंतत: वे अपने प्रयास में सफल रहते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार–"सृजनशील बालक दृढ़ निश्चयी होते हैं एवं जिन कार्यों को वे प्रारम्भ करते हैं उसे वे हर स्थिति में पूरा करते हैं। कार्य के दौरान आने वाली कठिनाइयों या विपरीत परिस्थितियों से वे आनुपातिक रूप से कम विचलित होते हैं।''[31]

नि:संदेह केशव और श्यामा को प्रेमचंद ने कुशल शिल्पी की तरह रुपायित किया है। बच्चों की सृजन प्रतिभा का उद्घाटन लेखक की अन्य कहानियों में भी हुआ है, जिसकी चर्चा प्रसंगानुसार की जाएगी। **'नादान दोस्त'** की भाषा, शिल्प, शैली सब कुछ बाल संवेदनाओं के अनुकूल है। पशु-पक्षियों के प्रति बच्चों के अनुराग का ऐसा मार्मिक चित्रण बहुत कम मिलता है। कहानी के कई अंश ऐसे हैं, जो हृदय को अंदर तक स्पर्श करते हैं, विशेषकर कहानी का अन्तशेष की चर्चा पीछे चुका है। अंत में यह कहना में कोई अतिरंजन्य नहीं है कि **'नादान दोस्त'** प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ बालकहानी है।

बीमार बहन

'बीमार बहन' एक बाल लघु कथा है। इसका प्रकाशन बाल पत्रिका **'कुमार'** के प्रवेशांक जुलाई 1932 ई० में हुआ। यह प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खण्ड-1 में संकलित है। **'बीमार बहन'** भाई-बहन के निश्चल प्यार की मार्मिक कथा है। इसमें एक बीमार बहन का छोटा भाई जी जान

से उसकी सेवा करता है। एक दिन जब बहन की तबियत खराब हो जाती है, तो वह बेचैन हो जाता है और अंत में मंदिर जाकर भगवान से बहन के शीघ्र स्वस्थ होने के लिए प्रार्थना करता है। कहानी अपने छोटे कलेवर में गहरा अर्थ रखती है। प्रेमचंद के अधिकांश बालपात्र गरीब, असहाय एवं परिस्थितियों के शिकार हैं। ये 'भाई बहन भी अनाथ हैं' सेवती बड़ी है और भोंदू छोटा है। लेकिन बहन के बीमार होने पर वह बड़ा बन जाता है। वह बहन का हर तरह से ख्याल रखता है। "जब सेवती पानी माँगती है तो भोंदू दौड़कर कटोरे में पानी लाता है। जब सेवती गरमी से बेचैन हो जाती है, तो वह उसे पंखा झलने लगता है।"[32] उस छोटे से बच्चे को पता है कि बीमार व्यक्ति के लिए उसका मनपसंद काम करने पर उसे सुख मिलता है। सेवती बालिका है और बच्चों को कहानियों से बेहद लगाव होता है। मनोवैज्ञानिक का भी मानना है कि "बच्चा कथा-कहानियों के बिना, कल्पना के खेल के बिना जी नहीं सकता; इसके बिना यह संसार उसके लिए चित्रपट पर बनी एक सुंदर तस्वीर मात्र होता है, कथा-कहानियाँ इस तस्वीर में प्राण फूँकती हैं।"[33]

भोंदू मदरसे से छूटते ही बहन के पास भागा हुआ आता है। उसे तरह-तरह की कहानियाँ सुनाता है। बीमार सेवती को कहानियों से ऊर्जा और ताजगी मिलती है। कहानियों की तरह खेल भी बच्चों के जीवन का अनिवार्य अंग है। प्रेमचंद बाल-मनोविज्ञान के पारखी हैं। वे खेल की चर्चा करना यहाँ भी नहीं भूलते। सेवती बीमार होने के कारण खेलने नहीं जा पाती। भाई ने भी खेल को त्याग रखा है। बहन के बिना भला वह कैसे खेलेगा? इतनी छोटी उम्र में इतना त्याग, इतना प्यार, इतनी सेवा।

परिस्थितियों ने भोंदू को असमय ही समझदार बना दिया है। खेलने-कूदने और चिन्तामुक्त रहने के दिनों में वह दुनियादारी से जूझ रहा है। लेकिन है तो वह बालक ही आखिर कर ही कितना सकता है! सेवती की तबियत अचानक काफी बिगड़ जाने पर वह परेशान हो उठता है। कोई रास्ता न पाकर उसका बालमन ईश्वर की शरण लेता है। बच्चों के लिए ईश्वर या भगवान कोई गंभीर वस्तु नहीं है। वे घर में देखा-देखी इबादत करते हैं। पूजा करते हैं और थोड़ी-थोड़ी बातों को समझते हैं। लेकिन भोंदू सामान्य बालक नहीं है। वह परिस्थितियों का मारा हुआ है। इस मुसीबत की घड़ी में वह दिवंगत माँ-बाप को भी याद करता है–"माँ बाप से सुना था, ईश्वर बड़ा दयालु है, तो क्या वह एक बालक की प्रार्थना न सुनेगा?"[34] और अंततः कच्ची उम्र का वह 'प्रौढ़' लड़का ज्यों ही मंदिर में आरती होने लगी, वह वहाँ गया और प्रतिमा के सामने भूमि पर सिर रखकर ईश्वर की प्रार्थना करने लगा, "भगवान! तुम दयालु हो, दीन पर कृपा रखते हो। मेरी

सेवती को जल्द अच्छा कर दो।''[35]

बहन के प्रति इतने छोटे बालक का यह निश्छल प्यार और इतनी कोमल संवेदना अन्यत्र दुर्लभ है। एक बालक के भोलेपन एवं त्याग की ऐसी सुन्दर तस्वीर और कहाँ मिलेगी ! निश्चित रूप से प्रेमचंद की यह कहानी बाल हृदय की गहराई में जाकर लिखी गई है और मर्म को स्पर्श करती है। कहानी अत्यन्त सरल शैली में है।

संदर्भ-सूची

1. प्रेमचंद रचनावली, भाग-13 , पृ० सं० 11
2. वही, पृ० सं० 11
3. वही, पृ० सं० 11
4. वही, पृ० सं० 12
5. वही, पृ० सं० 12
6. वही, पृ० सं० 12
7. वही, पृ० सं० 11
8. वही, पृ० सं० 13
9. वही, पृ० सं० 14
10. प्रेमचंद रचनावली, भाग- 18 , पृ० सं० 233
11. प्रेमचंद रचनावली, भाग-13 पृ० सं० 15
12. वही, पृ० सं० 13
13. वही, पृ० सं० 14
14. वही, पृ० सं० 12
15. प्रेमचंद रचनावली, भाग-१२ पृ० सं० 241
16. प्रेमचंद रचनावली, भाग-13 पृ० सं० 12
17. वही, पृ० सं० 13
18. वही, पृ० सं० 16
19. वही, पृ० सं० 16

20. वही, पृ० सं० 16

21. प्रेमचंद रचनावली, भाग-१३, पृ० सं० 17

22. वही, पृ० सं० 13

23. वही, पृ० सं० 17

24. वसीली सुखोम्लीन्स्की, बाल हृदय की गहराइयाँ पृ० सं० 42-47

25. प्रेमचंद रचनावली-14, पृ० सं० 181

26. वही, पृ० सं० 180

27. वही, पृ० सं० 181

28. वही, पृ० सं० 183

29. वही, पृ० सं० 183

30 वसीली सुखोम्लीन्स्की, बाल हृदय गहराइयाँ, पृ० सं० 75-76

31. शशी चितौड़ा, हरिश्चन्द्र नरशावत, शिशु एवं बाल मनोविज्ञान, पृ० सं० 209

32. प्रेमचंद रचनावली, भाग-१५, पृ० सं० 49

33. वसीली सुखोम्लीन्स्की, बाल हृदय की गहराइयाँ, पृ० सं० 42

34. प्रेमचंद रचनावली भाग-15, पृ० सं० 49

35. वही, पृ० सं० 49

कुत्ते की कहानी

'कुत्ते की कहानी' प्रेमचन्द्र की सुप्रसिद्ध रचना है। जब भी प्रेमचन्द्र द्वारा लिखित बाल साहित्य की चर्चा होती है, इसका नाम प्रमुखता से लिया जाता है। बच्चों से संबंधित लिखी गई कहानियों में यह सर्वाधिक लम्बी एवं बड़े कलेवर में है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी इस लम्बी कहानी में एक कुत्ते के जन्म से लेकर, आगे तक की जीवन-यात्रा का रोमांचक वर्णन है। कहानी में कई तरह के रंग, स्तर और पड़ाव हैं, जो इतनी बड़ी कहानी के साथ स्वाभाविक है। मुख्यत: यह एक कुत्ते की बहादुरी, वफादारी एवं सूझबूझ का जीवंत दस्तावेज है लेकिन लेखक का उद्देश्य केवल यही नहीं है। वह इसमें एक ही साथ सामाजिक असंगतियाँ, पाखण्ड, कुत्ते के रूप में सभी जानवरों की पीड़ा, पशुओं के प्रति मनुष्य के सामान्य व्यवहार सहित कई महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करता है। कहानी में बच्चे भी उपस्थित हैं, लेकिन गौण रूप में। प्रेमचंद **'कुत्ते की कहानी'** के माध्यम से बच्चों में मानवीय गुणों को भरना चाहते हैं। उन्हें अच्छाई और बुराई का फर्क बताते हुए जीवन यथार्थ का पाठ भी पढ़ाते हैं। कहानी में सीख एवं प्रेरणा के तत्त्व भरे पड़े हैं।

कहानी की शुरुआत कुत्ते के जन्म से होती है। पहले वे चार भाई होते हैं, ठंड के कारण दो की मृत्यु हो जाती है और दो ही शेष रह जाते हैं। कथानायक (कल्लू) एक पंडित के घर पलने लगता है और उसका भाई जकिया, डफाली मुसलमान के यहाँ। जकिया के खूब मजे रहते हैं, पर कल्लू को खाने के लाले। लेकिन जब उसके बहादुरी भरे कारनामे शुरू होते हैं, वह सबका चहेता बन जाता है। सबसे पहले वह पंडित के लड़के को डूबने से बचाता है, फिर उनके घर में हुई चोरी का माल पकड़वाता है, पंडित जी के दुश्मन गड़ेरिये की कारगुजारियों को नाकाम करता है और जंगली सुअर के आतंक से गाँव को मुक्ति दिलाने के अभियान में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। इसी क्रम में वह अंग्रेज साहब की जान भी बचाता है। परिणामत: वे कुत्ते को अपने साथ लेकर विलायत चल देते हैं। यात्रा समुद्री जहाज से होती है। रास्ते में जहाज दुर्घटना ग्रस्त हो जाता है। बाद में साहब और मैडम एक जंगली कबीले के लोगों द्वारा कैद कर लिये जाते हैं। वहाँ एक महीने तक वे कैद में रहते हैं। कुत्ता उन दोनों की जी-जान से सेवा करता है और एक दिन साथ लेकर भाग जाता है। रास्ते में एक शेर से भेंट होती है। कुत्ते की ही बदौलत शेर उनका दोस्त बन जाता है और इन सब की रक्षा करता है। इन्हें बचाने के चक्कर में उसकी मृत्यु हो जाती है। अन्तत: तीनों इस लम्बे झंझावात से मुक्त होते हैं और वापस अपने देश लौट आते हैं। कुत्ते के करिश्माई कार्यों के

कारण उसकी चर्चा दूर-दूर तक होती है और लोग उसे देवता समझ कर उसकी पूजा करते हैं।

'कुत्ते की कहानी' किस्सागोई शैली में बच्चों को सम्बोधित करते हुए लिखी गई है–"बालकों ! तुमने राजाओं और वीरों की कहानियाँ बहुत सुनी होंगी, लेकिन किसी कुत्ते की जीवन कथा शायद ही सुनी हो।"[1] कहानी में आगे भी 'एक दिन की बात सुनो' और 'एक दिन की बात सुनिए' जैसे संबोधन-वाक्य आए हैं। शुरूआत ऐसी है कि बच्चे अपने आप कहानी के प्रति आकर्षित हो जायेंगे और कुत्ते के साथ उनका आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा। यह कहानी एक कुत्ते के त्याग, स्वामिभक्ति, साहस और बुद्धिमानी की मनोरंजक यात्रा है।

"पंडित जी के घर में जब चोर आते हैं, उस समय कुत्ते की सूझ-बूझ काबिले-तारीफ है। चोरों द्वारा ढ़ेला खाने एवं स्वयं अपने मालिक की लातें सहते हुए भी कल्लू पंडित जी को जगाने एवं उन्हें 'कन्वीन्स' करने की कोशिश करता रहा कि उनके घार में चोर आया है। प्रेमचन्द्र यहाँ एक जानवर एवं आदमी में अंतर प्रस्तुत करते हैं। कल्लू अपनी बुद्धिमत्ता एवं बहादुरी पहले सिद्ध कर चुका है। लेकिन वह एक जानवर है **'कुत्ता है'** पंडित जी उसे इसी रूप में लेते हैं। इसी कारण यहाँ कल्लू को इशारों से समझाने के बजाय उल्टे उसे लातें लगाते रहते हैं। कुत्ता इससे परेशान आहत है–"मुझे बार-बार गुस्सा आया था कि पण्डित जी की बुद्धि पर आज पत्थर क्यों पड़ गया है। वे मेरे इशारे क्यों नहीं समझ रहे हैं।"[2]

चोरों के जाने के बाद पंडित जी हाय-हाय करके चिल्लाने लगे। यहाँ भी कल्लू लगातार गड्ढ़े की ओर इशारा करना चाहता है, पर मनुष्यों की नज़र में **'चेतनाहीन'** पशु पर कौन ध्यान दे! कुत्ता परेशान है, पर उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। कुत्ते को लोगों की मूढ़ता पर हँसी आती है और अपने पशु होने पर अफसोस भी–"बेसमझ ये सब हैं कि मैं? घण्टों से इशारे कर रहा हूँ, पर किसी के समझ में बात नहीं आती है.....फिर भी अपने को समझदार कहते हैं? क्या कहूँ, कहीं मैं भी आदमी होत, तो दिखा देता।"[3] अंत में कुत्ते की एक चालाकी काम कर जाती है वह पानी में घुसकर एक कटोरी को दाँत में पकड़ लेता है। तब लोगों को बात समझ में आती है और चोरी का माल मिल जाता है। इसके लिए कुत्ते को कितनी जलालत उठानी पड़ती है। यदि उसकी जगह पंडित का कोई भरोसेमंद दोस्त या नौकर ही होता, तो भी वह यह सब नहीं करता। लेखक ने पशु के चरित्र को यहाँ ऊँचाई पर पहुँचा दिया है।

इस कहानी में बाल पाठकों का मन कुत्ते के साथ-साथ रहता है। उसके साहसिक कारनामें से वे उत्साहित और रोमांचित तो होते ही हैं, उसके दु:ख-दर्द से बच्चों के मन में गहरी सहानुभूति भी

उपजती है। प्रेमचन्द्र की यह सोद्देश्यता ही कही जायेगी कि वे चुनमुन साथियों को बचपन से ही जानवरों के साथ संवेदनात्मक जुड़ाव की व्यवस्था करते हैं। कहानी में जगह-जगह कुत्ते के माध्यम से पूरे पशु जगत का दर्द उभर कर सामने आया है। कुत्ते की माता गाँव वालों की रक्षा के लिए स्वयं रात भर जगती है। बाहरी जानवरों को भगाने के लिए उनसे लड़ पड़ती है। "मगर इतना सब कुछ करने पर भी कोई उन्हें खाने को न देता था। बेचारी पेट की आग से जला करती थीं। उन पर हम लेागों की चिंता उन्हें और मार डालती थी। इसलिए जब भूख सताती, तो कभी-कभी वह चोरी से घरों में घुस जाती और खाने की जो चीज़ मिल जाती, लेकर निकल भागतीं। उन्हें देखते ही लोग मारने दौड़ते और घरों के द्वार बन्द कर लेते।"[4]

यहाँ लेखक बच्चों को एक सच्चाई से परिचित कराना चाहता है, कि जानवर मजबूरीवश ही लोगों के घरों में घुसते हैं। यदि बिल्ली को दूध मिल जाय तो वह चोरी क्यों करें? चूहों को अनाज मिल जाय तो कपड़ा क्यों काटें? इसी प्रकार रात-रात जागने वसले कुत्तों को लोग थोड़ा-थोड़ा ही खाने को दे दें तो उन्हें किसी के घर में घुसने की कोई जरूरत नहीं है। कुत्ते की माता बनिए के यहाँ ब्राह्मण भोज के अवसर पर घर में घुस जाती है। वहाँ कोई उसे एक टुकड़ा तक नहीं देता, उल्टे डन्डे लेकर बनिया उस पर पिल पड़ता है। जान बचाने के लिए कुत्ते की माता को नाली के रास्ते भागना पड़ता है। जो पशु, मनुष्यों के लिए इतना करते हैं, उनके साथ मनुष्य का यह व्यवहार! जानवरों के प्रति लोग इतना उपेक्षा भाव रखते हैं और कभी-कभी तो क्रूरता की हद तक लाँघ जाते हैं। इस कहानी में जकिया और कल्लू को उकसाकर लड़वाते हैं और फिर मजा लेते हैं। इसी देश में तीतर-बटेर, मुर्गे और साँड़ को लड़ाने की क्रूर प्रथा रही है। कल्लू के मालिक उसे तब तक उसे उपेक्षित किये रहते हैं, जब तक कि वह उनके लड़कों को डूबने से नहीं बचाता, और चोरी के माल को बरामद नहीं करवाता। कल्लू को भी खाने के लिए दर-दर भटकना पड़ता है।

कुत्ते के साहसिक कार्यों एवं उसकी बुद्धिमत्ता के कारण लोग उसे देवता मानने लगते हैं। कहानी के अंतिम भाग में उसके दर्शन हेतु काफी भीड़ इकट्ठी होती है, इससे साहब और मेम की ख्याति ऊँची होती जाती है और उनका मान-सम्मान बढ़ता है। जानवरों को कैद करके उनकी स्वाभाविक जिन्दगी को खत्म करने में मनुष्यों को बड़ा आनन्द मिलता है। वह भूल जाता है कि जानवरों की भी अपनी एक जिन्दगी होती है। जिससे वे अपनी तरह जीना चाहते हैं। तोते-मैना, हिरन, खरगोश, कुत्ता, हाथी, घोड़ा आदि जितने भी पालतू-जानवर हैं, सबका इस्तेमाल मनुष्य अपनी सुख-सुविधा एवं मनोरंजन के साधु के रूप में करता है। मनुष्य इन पालतू जानवरों के लिए

कितनी भी सुविधा क्यों न जुटा ले, रखता है गुलाम है गुलाम के रूप में ही। यही कारण है कि मौका मिलते ही ऐसे पशु-पक्षी निकल भागते हैं। (अपवाद स्वरूप हो सकता है, कि जब जानवर और मनुष्य में संवेदनात्मक स्तर पर संबंध बन जाता है और पशु-पक्षी आराम से रहते हैं। लेकिन उनका असली जीवन मुक्ति में ही है, यह स्पष्ट है। यहा कुत्ते ही पीड़ा कितनी मार्मिक है–

"मैं अकेला कहीं नहीं जा सकता, मगर अब यह मान-सम्मान मुझे बहुत अखरने लगा है। यह बड़प्पन मेरे लिए कैद से कम नहीं है। उस आजादी के लिए जी-तड़पता रहता है, जब मैं चारों तरफ मस्त घूमा करता था। न जाने आदमी साधुन बनकर मुफ्त का माल कैसे उड़ाता है। मुझे तो सेवा करने में जो आनन्द मिलता है वह सेवा पाने में नहीं मिलता, शतांश भी नहीं।"[5]

'कुत्ते की कहानी' का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें लेखक ने समाज में व्याप्त धार्मिक-सामाजिक अंधविश्वास, भेदभाव एवं कुरीतियों पर भी प्रहार किया है। जानवरों के प्रति आदमियों की मतलबपरस्ती की चर्चा में पीछे कर चुका हूँ। वस्तुतः प्रेमचन्द्र एक प्रगतिशील रचनाकार थे। वे बच्चों को अच्छाइयों के साथ-साथ समाज में व्याप्त बुराइयों से भी परिचित कराना चाहते थे। ताकि वे आगे चलकर अच्छे नागरिक बनें। बालमन के मर्मज्ञ अध्येता बसीली सुखोम्लीनस्की स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं–"मेरी चेष्टा यह थी कि छोटी उम्र से ही मेरा हर शिष्य ये समझने लगे कि इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण सामाजिक बुराई है और वह कभी भी इस बुराई को सहन करने के लिए तैयार न हो।"[6]

"मेरे विचार में चरित्र-निर्माण का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है कि बच्चे बुराई को कोई अमूर्त वस्तु न समझें, बल्कि वे अनुभव करें कि यह एक ऐसी वास्तविक शक्ति है, जो संसार के सभी ईमानदार लोगों की शत्रु है।"[7] बनिये के यहाँ उत्सव में ब्राह्मणों को खिलाया जाता है, जब कि उनकी जगह गरीबों का भी पेट भरा जा सकता है, जिन्हें इसकी ज्यादा आवश्यकता होती है। रोज रखवाली करने वाले जानवर की पिटाई भी की जाती है। और तो और कुत्ते के बगल से निकल जाने भर से भोजन भ्रष्ट हो जाता है। ब्राह्मण समाज का यह पाखण्ड देखने लायक है। अब जरा पंडित जी महाराज का ढोंग देखा जाय। पंडित जी चूहों को मारने के सख्त खिलाफ हैं। उनका तर्क है कि–'चूहे गणेशजी के वाहन हैं। इन्हें तकलीफ न देनी चाहिए, इनके खाने से कितना अनाज कम हो जायेगा? उनका विश्वास था कि चूहे जितना गल्ला नुकसान करते हैं, उसका चौगुना श्री गणेश जी की दया से उपज में बढ़ जाता है, इसलिए जब वह किसी को चूहेदानी लगाते देखते, तो उससे पचासों बातें कहते।"[8]

जब चूहों ने उनके कपड़ों आदि को नुकसान पहुँचाना शुरू किया तो वे उनके जान के सबसे बड़े सौदागर बन बैठे। प्रतिदिन पूजा पाठ करने वाले पंडितजी चूहों को तड़पा-तड़पा कर मारते हैं। कुत्तों को भी इसमें शामिल कर लेते हैं। प्रेमचन्द पंडित के इस ढोंगी चरित्र को बेनकाब करते हैं। कुत्ता स्वयं पंडित जी की पोल खोलता है–"अब उनके गणेश जी क्या हुए? क्या अब ये चूहे गणेश जी के वाहन नहीं हैं? क्या अब इस हत्या से नाराज होकर गणेश भगवान पंडित जी को दण्ड न देंगे?''[9]

लोगों के अंधविश्वासी चरित्र पर प्रेमचन्द्र बार-बार प्रहार करते हैं। वस्तुत: इनके पीछे उनकी दृष्टि यही है, कि भावी पीढ़ी को इन मिथ्या आडम्बरों से बचाया जाय। समाज में जानवरों को चेतनाहीन एवं उपेक्षित समझा जाता है। लेकिन यहाँ जब कुत्ता कुछ साहसिक काम करता है तो लोग उसे **'देवता'** बना देने पर तुल जाते हैं, उस पर फूल चढ़ाते हैं, हाथ जोड़ते हैं, प्रशंसा करते हैं, कई देवियाँ तो उसके पाँव भी छूती हैं, प्रशंसा करते हैं.....आदि आदि। कुत्ता कहता है–"मुझे उनकी मूर्खता पर हँसी आ रही थी। आदमियों में भी ऐसे-ऐसे अक्ल के अन्धे मौजूद हैं।''[10]

लोगों की कायरता का एक और नमूना दर्शनीय है, गाँव में जंगली सुअरों के आतंक का सामना करने की हिम्मत किसी में भी नहीं होती। अंतत: कुत्ते ही इस मुसीबत से गाँव वालों को निज़ात दिलाते हैं। लोगों की इस कायरता पर कथानायक की सटीक टिप्पणी है–

"सबसे बड़ा खेद तो यह था कि गाँव में सैंकड़ों आदमी थे, पर किसी में इतना साहस नहीं कि उन्हें ललकारे। कुत्तों को मारने में तो सभी शेर थे, पर सूअरों के सामने सब-के-सब बिल्ली बने हुए थे।''[11]

"**कुत्ते की कहानी**'' में बच्चे भी आये हैं। आरंभ के थोड़े अंश में बच्चों की उपस्थिति है। उन प्रसंगों की चर्चा करना मैं ज्यादा आवश्यक समझता हूँ। बच्चों को पशुओं के छोटे बच्चों से अगाध प्रेम होता है। पशुओं के नन्हें बच्चें उनके लिए क्रीड़ा-कौतुक की वस्तु होते हैं। बच्चों का इनके साथ खूब मन लगता है। यहाँ बाल-क्रीड़ा का एक मनोरथ दृश्य है–

"जाड़े का समय था। जब सब लड़के धूप में जमा हो जाते तो हमें गोद में ले लेते और चूमते। कोई कहता हमारा बच्चा है। कोई कहता, हमारा मुन्ना है। कोई लड़का एक कान पकड़कर उठाता और कहता, देखो भाई, चोर है या साह? जब तक कान दर्द न करते मैं न बोलता। बस सब कहने लगते, फेंको-फेंको चोर है। मगर जब कान दु:खने से चिल्ला उठता, तो सब साह-साह कहकर हँस पड़ते। प्राय: यह खेल सैंकड़ों बार होता। कोई हमारे अगले पैरों को उठाकर कहता–मेरा

मुन्ना दो पैर से चलता है। यों चलाये जाने से हमारे पैर दर्द करने लगते थे, पर करते क्या। कभी-कभी छोटे-बड़े लड़के छोटे बच्चों को मेरी पीठ पर बैठाकर कहते, मेरा लल्लू हाथी पर बैठा है।''[12] यद्यपि इस क्रीड़ा में कुत्ते बेचारों की जान पर आफत आ जाती है। पर बच्चे तो बच्चे हैं। उन्हें क्या पता कि उसे दर्द भी हो रहा होगा! गाँव में इस पर एक अच्छी सी कहावत भी है–"चिड़िया की जान जाय और बच्चों का खिलौना।'' कई बिन्दु ऐसे हैं, जो खटकते हैं। विशेषकर बच्चों की कहानी के सन्दर्भ में मुझे ये बिन्दु पूर्णतया असंगत लगते हैं। इन असंगतियों पर भी एक नज़र डाल लेना मुझे जरूरी लग रहा है।

कल्लू पंडित जी के यहाँ रहता है और जकिया डफाली के वहाँ। प्रेमचन्द्र लिखते हैं, "जकिया पक्का मुसलमान था, रोज मांस खाता था।''[13] और "मैं सच्चा हिन्दू और पूरा ब्राह्मण हो गया था, क्योंकि विशेषकर ब्राह्मण का ही अन्न, जल, खाना-पीना पड़ता था। माँस पर रूचि ही न होती थी।''[14] लेखक यह बताना चाहता है कि ब्राह्मण सबसे पवित्र एवं उत्तम कोटि के प्राणी होते हैं और वे ही सच्चे हिन्दू होते हैं। दूसरी तरफ यदि कोई मुसलमान होगा तो वह हर हाल में मांसभक्षी होगा। पंडित जी के यहाँ माँस नहीं पकता, लेकिन जीवित पशुओं की हत्या जरूर होती है। पंडित जी स्वयं अपने गणेश जी के वाहनों को क्रूरता पूर्वक मौत के घाट उतारते है। अब ब्राह्मणत्व कहाँ गया?

कुत्ता पंडित जी को याद करते हुए एक जगह कहता है कि "ब्राह्मण होकर भी जिसने तुम्हें गोद में खिलाया।''[15] इसका सीधा अर्थ यही है, ब्राह्मण अत्यंत उच्च कोटि के शुद्ध प्राणी होते हैं, वे भला कुत्ता जैसे निम्न कोटि के जानवर को कैसे गोद में खिला सकते हैं। यदि ऐसा वे करते हैं तो यह उनकी प्रचण्ड महानता है। प्रेमचन्द्र जैसा प्रगतिशील लेखक बालकों को यह कौन सा समाज शास्त्र पढ़ा रहा है? पूरी कहानी में पूजा-पाठ, काल-भैरव, देवता, ईश्वर, दया जैसे शब्द भरे पड़े हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है, कि कुत्ते का 'हिन्दूकरण' हो गया है। कई जगह संकट में पड़ने पर कुत्ता 'ईश्वर-ईश्वर' की गुहार लगाने लगता है और भाग्य की महत्ता बताता है–

"शाह की मोहर आने-आने पर, खुदा की मोहर दाने-दाने पर।''[16]

"खुदा जिसको जो दाना देना चाहेगा, वही पा सकता है। दूसरा हरगिज नहीं।''[17]

"सबको खिलाने वाला ईश्वर है।''[18]

"जब तक ईश्वर नहीं बिगाड़ेगा, आदमी कुछ नहीं कर सकता।''[19]

'जाको राखें साइयां मार न सकै कोय।'[20]

'तकदीर से उठी हुई चीज फिर कहाँ मिलती है।'[21]

कहानी में एक विशुद्ध अवांछित प्रसंग भी आया है। रामायण में वर्णित एक कुत्ते का प्रसंग लेखक उठाता है। जिनमें कुत्ता रामचन्द्रजी के दरबार में जाता है। यह पूरा प्रसंग मुझे निहायत ही बकवास लगा। इसमें भी वेद-पुराण, ठाकुर जी, महंत, पुनर्जन्म, पूजा-पाठ आदि का ही प्रपंच रचा गया है।

कुचा जब गुण नामक लड़के को यह सजा देता है कि इसे राजमंदिर का महंत बना दिया जाय तो रामचन्द्र जी आश्चर्य में पड़ जाते हैं। तब कुत्ता कहता है–"भगवन, इसे पुरस्कार न समझिए, यह भयानक दण्ड है। यह ब्राह्मण बालक अच्छे आचरण का होता तो देवता हो जाता, मगर महन्त होने पर यह कुत्ता होगा।"[22] वह कुत्ता यह भी बताता है, कि गलत काम करने के कारण उसका जन्म कुत्ता का हो गया अर्थात् ब्राह्मण लड़का अच्छे चरित्र का होगा तो देवता होगा (पता नहीं, दूसरी जाति के अच्छे चरित्र के लड़के मरने के बाद क्या होंगे?) और महंत होने पर कुत्ता। आश्चर्य है प्रेमचन्द, कुत्ते की कहानी में ही यह बता रहे हैं, कि कुत्ते के रूप में जन्म लेना बुरे कर्मों का फल होता है। कहानी के अन्तर्गत्त इस तरह की उप कहानी कहीं से प्रसंगानुकूल नहीं है और बच्चों के लायक तो कतई नहीं।

दलित-जीवन को अपने कथा साहित्य में संजीदगी के साथ चित्रित करने वाले प्रेमचन्द्र ने कुत्ते की कहानी में पूरी तरह यह सिद्ध कर दिया है, कि दलित सबसे नीच होते हैं। वे गंदे रहते हैं, और केवल दलित ही गंदगी का काम करते हैं। कहानी के आरम्भ में ही ब्राह्मण भोज के दौरान कुत्ते की माता बैठे हुए ब्राह्मणों के बीच से होकर जाती है। इसका परिणाम यह होता है, कि सारा भोजन **'पवित्र'** ब्राह्मणों द्वारा **'अपवित्र'** करार दिया जाता है और अछूतों में बाँट दिया जाता है आशय यह है कि सभी अपवित्र, गंदी-गलीच वस्तुएं अछूतों के लिए ही होती हैं और अछूत इसे बड़े प्रेम एवं गर्व के साथ ग्रहण करते हैं। साहब के बंगले पर एक दिन जब पंडित जी पधारते हैं, तो उनके गंदे कपड़े को देखकर कुत्ते के रूप में लेखक की प्रतिक्रिया है–"कपड़े तो इतने मैले हो गये थे कि साहब का मेहतर भी न पहनता।"[23] लेखक महोदय यहाँ यह बताना चाहते हैं, कि सबसे ज्यादा गंदा कपड़ा मेहतर पहनता है और शेष लोग (विशेषकर ब्राह्मण) बगुला के धवल वस्त्र को ही धारण करते हैं। इसी प्रकार अंत में जब कुत्ता अपने साहब और मेम समेत वापस लौटता है तो उसे **'मेहतर'** नहलाता है। यहाँ **'नौकर'** शब्द का प्रयोग भी हो सकता था, लेकिन प्रेमचन्द बच्चों को अभी से यह बताना चाहते हैं कि इस तरह के सारे काम मेहतर ही करते हैं।

जहाज पर बैठे-बैठे कुत्ता अपने गाँव को याद करते हुए सोचता है–"गाँव में बुद्धू पासी जब कभी शराब पीकर आता है, तो कोई उसे पास न बैठने देता।''[24] इसका मतलब यह है, कि उस गाँव में 'बुद्धू पासी' ही शराब पीता है, पंडित जी या अन्य लोग तो सन्त महात्मा हैं। पासी जाति का इस रूप में जिक्र करना बच्चों की कहानी में कदापि उचित नहीं है।

ये तीनों दृश्य मुझे कहानी के कमजोर, अवांछित एवं घटिया पक्ष लगते हैं! लेखक को इसका जरा भी भान नहीं है कि वह बच्चों के लिए कहानी लिख रहा है और बच्चों पर स्थितियाँ, घटनाओं, चरित्रों का सीधा प्रभाव पड़ता है। प्रेमचन्द्र जैसे सहज लेखक से ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। कहानी में कई जगह अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी आये है। विशेषकर कबीले में कैद के दौरान कुत्ता बड़ी सी चट्टान हटा देता है, और उसे दरवाजे पर पूर्ववत् लगा भी देता है। एक महीने तक रोज-रोज ऐसा करना अटपटा सा लगता है। प्रेमचन्द ने स्वयं कहीं-कहीं कुत्ते का दैवीकरण कर दिया है। कहीं-कहीं प्रसंगों को अनावश्यक लंबा कर दिया गया है। जिससे कुछ बोरियत भी होने लगती है। ध्यान रहे कि कहानी बच्चों के लिए लिखी जा रही है।

इस कहानी में 'तवज्जह करना', पेसोपेश, कुलीन, किलनियाँ, टिक्की बाँटी करना, इकबाल (साहब का इकबाल है) मसला (मसला है) जैसे कठिन शब्द भी आये हैं। लेकिन कई जगह भाषा के अच्छे प्रयोग के नमूने भी देखने को मिलते हैं। जैसे–"वह रात पहाड़ हो गयी। ऐसा जान पड़ता था कि सूरज भी मारे डर के कहीं मुँह छिपाये पड़ा है।''[25] "भूख के मारे पेट कांव-कांव कर रहा था।''[26], " उनकी नाक जोर-जोर से बाज रही थी। कोई दूर से सुनता, तो जान पड़ता, दो बिल्लियाँ लड़ रही हैं।''[27], "अरे ! क्या आसमान फट पड़ा। या दो पहाड़ लड़ गये। ऐसे जोर की गरज हुई कि सारी गुफा हिल गयी। शेर की गरज थी।''[28]

कहानी के अंत में जब कुत्ता अपने मालिक के घर वापस लौट आता है, तब साहब और मेम उसका खूब मान-सम्मान करते हैं। यहाँ कुत्ते का यह कथन मुझे पूरी कहानी का निचोड़ लगता है, और नन्हें दोस्तों के लिए प्रेरणास्प्रद है– "मुझ में कोई सुर्खाब के पर नहीं लग गये हैं। मैं आज भी वही कल्लू हूँ वही कमजोर , मरियल कल्लू। मगर मैंने अपने कर्त्तव्य पालन में कभी चूक नहीं की, सच्चाई को कभी हाथ से नहीं जाने दिया। अवसर पड़ने पर खतरों का निडर होकर, हथेली पर जान रखकर, सामना किया। जो कुछ सत्य समझा उसकी रक्षा में प्राण तक देने को तैयार रहा ... .और उसकी वरकत है कि मैं इतना स्नेह और आदर पा रहा हूँ।''[29] कुत्ते की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी है, लोग देवता समझकर उसे पूजने लगे हैं, लेकिन उसके अंदर थोड़ी सी भी अहं की

भावना नहीं आ पाती। चलते-चलते मुक्ति की कामना करता हुआ कुत्ता एक कोई अच्छा संदेश बच्चों के लिए दे जाता है–

"मैं अकेला कहीं नहीं जा सकता, मगर अब यह मान-सम्मान मुझे बहुत अखरने लगा है। यह बड़प्पन मेरे लिए कैद से कम नहीं है। उस आजादी के लिए जी तड़पता रहता है, जब मैं चारों तरफ मस्त घूमा करता था। न जाने आदमी साधु बनकर मुफ्त का माल कैसे उड़ाता है। मुझे तो सेवा करने में जो आनन्द मिलता है वह सेवा पाने में नहीं मिलता, शताशं भी नहीं।"[30]

संदर्भ-सूची

1. प्रेमचंद रचनावली, भाग-18, पृ० सं० 119
2. वही, पृ० सं० 229
3. वही, पृ० सं० 230
4 वही, पृ० सं० 219
5. वही, पृ० सं० 247
6. वसीली, सुखोम्लीन्स्की, बाल हृदय की गहराइयाँ, पृ० सं० 53
7. वही, पृ० सं० 53
8. प्रेमचंद रचनावली भाग - 18.पृ० सं० 223
9. वही, पृ० सं० 224
10. वही, पृ० सं० 246
11. वही, पृ० सं० 232
12. वही, पृ० सं० 221
13. वही, पृ० सं० 224
14. वही, पृ० सं० 224
15. वही, पृ० सं० 235
16. वही, पृ० सं० 221
17. वही, पृ० सं० 221

18. वही, पृ० सं० 221
19. वही, पृ० सं० 226
20. वही, पृ० सं० 226
21. वही, पृ० सं० 230
22. वही, पृ० सं० 231
23. वही, पृ० सं० 235
24. वही, पृ० सं० 236
25. वही, पृ० सं० 238
26. वही, पृ० सं० 239
27. वही, पृ० सं० 240
28. वही, पृ० सं० 243
29. वही, पृ० सं० 245-246
30. वही, पृ० सं० 247

बच्चों के बारे में लिखी गई कहानियों में बाल मनोविज्ञान

प्रेमचंद ने बच्चों को आधार बनाकर कई कहानियाँ लिखीं हैं। इनमें **'ईदगाह'**, **'रामलीला'**, **'चोरी'**, **'गुल्ली डण्डा'**, **'सच्चाई का उपहार'**, **'बड़े भाई साहब'** आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ और कहानियाँ हैं, जिनमें बाल चरित्र प्रमुखता से उभरकर आये हैं; जैसे–**'दूध का दाम'**, **'तेंतर'**, **'प्रेरणा'** आदि। इसके अतिरिक्त प्रेमचंद की अनेक कहानियों में बालकों की उपस्थिति प्रसंगवश हुई है। कतिपय कहानियों में बच्चों का अनायास आगमन भी है। पहले बच्चों पर आधारित कुछ प्रमुख कहानियों की चर्चा।

ईदगाह

बच्चों के बारे में लिखी गई कहानियों में **'ईदगाह'**, हिन्दी कथा साहित्य की सर्वाधिक चर्चित रचना है। इसकी गिनती प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों में होती है। **'ईदगाह'** में बाल सुलभ उमंग, उत्साह, कौतुहल, प्रतिस्पर्धा एवं कल्पना का मनोरम दृश्य उपस्थित किया गया है। इसमें बच्चों की अपनी निजी दुनिया बेहतर ढंग से चित्रित हुई है। कहानी में ईद के दिन बच्चों का ईदगाह मेले में जाना, मिठाइयाँ खाना, खिलौने खरीदना, अपने-अपने खिलौनों को लेकर आपस में बढ़-चढ़कर बातें करना आदि बालसुलभ प्रवृत्तियों का सजीव वर्णन हुआ है। कहानी के बाल पात्रों में मोहसिन, महमूद, नूरे एवं सम्मी हैं। इन्हीं में हामिद भी है, यह कथानायक है। हामिद उन सभी बच्चों का प्रतिनिधि पात्र है, जो अभाव में पलते हैं, परिस्थितियों से लड़ते हैं एवं बचपन में ही प्रौढ़ बनने को विवश होते हैं।

'ईदगाह' में बाल संसार अपने पूरे उमंग एवं उल्लास के साथ उपस्थित है। त्योहार और उत्सव में बच्चे सर्वाधिक खुश रहते हैं। ऐसे दिवसों की वे खूब प्रतीक्षा करते हैं। इसी दिन तो बच्चे सबसे ज्यादा स्वतंत्र होते हैं और अपने ढंग से खुशी मनाते हैं। ईद के आगमन पर बच्चे सबसे अधिक प्रसन्न हैं। ईद के शेष पचड़ों से बच्चों का क्या लेना देना वह सब बड़ों का काम है। बच्चों के तो बस जल्दी से ईदगाह पहुँचने की चिन्ता है। रास्ते में सब तेज कदमों से चल रहे हैं–"कभी सबके सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथवालों का इन्तज़ार करते। ये लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गये हैं। वह कभी थक सकता है।"[1] जाहिर है, उनमें उमंग की लहरें हिलोरें ले रही हैं। रास्ते में

शरारत भी चल रहा है। बालवृंद भला शांत कैसे रह सकता है–"पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कँकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फर्लांग पर हैं। खूब हँस रहे हैं। माली को कैसे उल्लू बनाया है।''[2]

बच्चे चीज़ों के बारे में अपनी तरह से सोचते हैं। शहर में प्रवेश करने पर बच्चों का कौतुहल देखने लायक है। कॉलेज, क्लबघर, अदालत के बारे में उनका आपसी विचार-विमर्श आरंभ हो जाता है। लेखक वहाँ सतर्क है। वह बच्चों में इन शहरी चीज़ों के चलते हीनभावना नहीं आने देता। कॉलेज में बड़े लड़के पढ़ते हैं। लेकिन सिर्फ बड़े होने से क्या होता है? "हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं; बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या।''[3] क्लब घर को लेकर बच्चों की कल्पना कितनी प्यारी है–"क्लब घर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदे की खोपडियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, 'मूंछों दाढ़ी वाले और मेमें खेलती हैं, सच! हमारी अम्मा को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सके। घुमाते ही लुढ़क न जायँ।''[4]

भले ही क्लब घर की औरतें बैट-बॉल खेलें, लेकिन बच्चों की निगाह में उनकी क्या बिसात? गाँव में बच्चों की अम्मीजान के सामने वे ठहर पाएँगी? यहाँ ध्यान देने की बात है, बच्चे गाँव में रहते हैं, लेकिन शहरी जीवन और दुनियादारी के बारे में उनके नन्हें मस्तिष्क में कुछ न कुछ परिकल्पना अवश्य रहती है। लेखक इसे बारीकी से पाठकों के सामने रखता है। मोहसिन जिस तरह कॉन्सटेबल की बात करता है और समूची पुलिस-व्यवस्था का कच्चा-चिट्ठा खोलता है, वह बच्चों की सूझ एवं अपने परिवेश के प्रति जागरूकता का परिचायक है।

खिलौनों की दुकान पर बच्चों की आँखों कौतूहल से भर गई हैं। एक-से-एक खिलौने ! वही उत्सुकता मिठाई की दुकान शुरू होते ही बच्चों का वार्तालाप शुरू हो जाता है। मोहसिन बच्चों में सबसे बड़ा है। वह सब पर अपना बड़प्पन दिखाने की कोशिश करता है। वह सबको जिन्नात के बार में ऐसे बयान करता है, जैसे इसका बहुत बड़ा जानकार हो। यहाँ लेखक हामिद की बाल सुलभ जिज्ञासा का मोहक चित्र पेश करता है। हामिद द्वारा पूछे गए प्रश्न बालमन की परतों को खाल देते हैं। मोहसिन के मुँह से जिन्नातों के बारे में सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य होता है। वह जिन्नातों के

बारे में जानने के लिए प्रश्नों की झड़ी लगा देता है–इसी प्रकार मोहसिन जब पुलिस व्यवस्था के बारे में सच्चाई बताता है, वहाँ भी हामिद की जिज्ञासा उसके भोलेपन को दर्शाती है–"यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?''

x x x x x x

"एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं?''[5]

खिलौने बालजीवन के हमराही होते हैं। खिलौनों में बच्चों की जान बसती है। इसके बिना बचपन क्या **'ईदगाह'** में इसे गहराई से महसूस किया जा सकता है। मेले में बच्चों को खिलौने खरीदने में जो खुशी और आनंद मिलता है और किसी चीज़ में नहीं मिलता। अपने-अपने खिलौने लेने के बाद बच्चों में रास्ते भर परिचर्चा होती है। सब अपने-अपने खिलौने के बारे में प्रशंसा गढ़ते हैं–

"मोहसिन – मेरा भिश्ती रोज पानी दे जायगा, साँझ-सवेरे।

महमूद – और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आवेगा, तो फौरन बन्दूक से फैर कर देगा।

नूरे – और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी – और मेरी धोबिन रोज कपड़े धायेगी।''[6]

कितना उल्लास कितना उमंग है उनके मन में !

घर लौटने पर मोहसिन की छोटी बहन खिलौने पाकर इतना उछलती है कि खिलौना तो टूटता ही है, भाई-बहन में में मारपीट भी होती है। नूरे के दोनों छोटे भाई नूरे के खिलौने **'सिपाही'** को लेकर "छोने वाले जागते रहो'' की हांक लगाते हैं। मेले में तीन पैसे का मालिक हामिद कोई खिलौना नहीं खरीद पाता। वह खिलौनों की निंदा तो करता है परन्तु उसका बालमन बार-बार खिलौनों की ओर लपकता है। वह एक बार उन्हें हाथ में लेकर देखने तक के लिए लालायित है। यह है खिलौनों के प्रति बच्चों का अनुराग।

लेखक की एक अन्य कहानी **'लांछन'** में शारदा का खिलौनों के प्रति लगाव, मोह एवं उत्साह का मनोरम चित्रण है। रजा मियां बच्ची शारदा के लिए खिलौने भेजते हैं। यह दृश्य कितना प्यारा है–"सहसा शारदा पाठशाला से आ गयी और खिलौने देखते ही उस पर टूट पड़ी। देवी ने डाँट

कर कहा–क्या करती है; मेम ले ले, और सब लेकर क्या करेगी?

शारदा–मैं तो सब लूँगी। मैम को मोटर पर बैठा कर दौड़ाऊँगी। कुत्ता पीछे-पीछे दौड़ेगा। इन बरतनों में गुड़िया के खाने बनाऊँगी।''[7] खिलौने देखते ही बालमन कल्पना की दुनिया में उड़ चला। उसके पाँव अब धरती पर कहाँ हैं! अंततः शारदा की अम्मां जब उसे बाबू जी का डर दिखाती है, तब बाबूजी द्वारा खिलौने तोड़ देने के भय से शारदा खिलौनों को छुपा देती है।

बच्चे अपने खिलौनों पर स्वयं मुग्ध होते हैं। वे उसे अपने दोस्तों को भी दिखाना चाहते हैं। शारदा खिलौने पाकर प्रफुल्लित है। उसे अब अपनी सहेलियों को दिखाने की जल्दी है। बालकों में सब्र नहीं होता और वह भी खिलौनों के मामले में। खिलौने दिखाने की उत्सुकता के चक्कर में शारदा एक मोटर के नीचे आ जाती है और बाद में उसकी कारुणिक मौत हो जाती है। यद्यपि कहानी में यह मौत दिखाना दूसरे काव्य से भी जरूरी था। बहरहाल यह निश्चित है कि खिलौनों को लेकर बालकों के मनोविज्ञान की प्रेमचंद के पास गहरी समझ थी।

प्रतिस्पर्धा की भावना बालकों की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। बच्चे अक्सर मिठाई, कपड़े, खिलौने आदि को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा रखते हैं। **'ईदगाह'** में इसका सुन्दर उदाहरण प्रेमचंद ने प्रस्तुत किया है। बच्चे अपने-अपने खिलौनों को अच्छा एवं बड़ा साबित करने में लगे हैं। हामिद ने अब तक कुछ नहीं खरीदा है। इसके बावजूद वह इस स्पर्धा में पीछे नहीं रहना चाहता। प्रतिस्पर्धा में कोई बच्चा स्वयं को कम नहीं आँकता। "हामिद खिलौने की निंदा करता है–मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हों जायँ।''[8] असली जिरह तो तब शुरू होती है, जब हामिद चिपटा खरीद लेता है। यही उसका खिलौना है। तीन ही पैसे का सही, लेकिन किसी से कम नहीं। चिमटा देखकर शेष बच्चे उसका मज़ाक उड़ाते हैं–

"महमूद बोला–तो यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद – खिलौना क्यों नहीं? अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक हो गयी। हाथ में लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, वे मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा शेर बहादुर है–चिमटा।''[9]

हामिद **'ईदगाह'** कहानी का नायक है। एक ऐसा नायक, जो उम्र तो बच्चा है और बाल सुलभ सारी प्रवृत्तियाँ उसमें अन्तर्निहित हैं, लेकिन परिस्थितियों ने बचपन में ही उसे बड़ा बना दिया

है। लड़का जन्म लेते ही अभाव में पलता है, लेकिन उसका नन्हा मन बार-बार कल्पना करता है और वह मन-ही-मन इसके प्रति आश्वस्त भी है कि –"उसके अब्बाजान रूपये कमाने गये हैं। बहुत सी थैलियाँ लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें लेने गयी है।''[10] हामिद ने यह सब अपनी बूढ़ी दादी अमीना से सुना है। उसे विश्वास है ऐसा एक दिन होगा। यह बच्चों की आशा है!

ईद आने की खुशी हामिद को भी उतनी ही है, जितनी दूसरे बच्चों को। वह भी मेला जाता है, भले ही उसकी जेब में तीन ही पैसे क्यों न हो। रास्ते में बच्चों की बातचीत में सबसे अधिक प्रश्न 'हामिद' पूछता है। उसकी जिज्ञासा जल्दी शांत ही नहीं होती। जाहिर है, वह अभाव में पला है, उसका अनुभव संसार अभी सीमित है। मेले में लड़के खिलौने खरीदते हैं, मिठाइयाँ खाते हैं। हामिद को भी इन सब चीज़ों की उम्र हैं उसके पास कुल जमा तीने पैसे हैं, जिनका उपयोग वह खूब सोच-समझकर करना चाहता है। लेकिन मन-भावन खिलौनों को देखकर उसका बाल हृदय लालायित हो उठता है। यद्यपि वह स्वयं को कमतर न आँकते हुए बच्चों की प्रतिस्पर्धा में शामिल रहता है, यह बालक हामिद के स्वभाव की विवशता है। लगातार हामिद के बालमन एवं परिस्थितियों द्वारा निर्मित 'हामिद' में द्वन्द्व चलता रहता है।

लोहे की दुकान पर बच्चों का क्या काम ! लेकिन हामिद वही रूक जाता है। लोहे के चिमटे को देखते ही उसके दिमाग में हलचल शुरू हो जाती है। क्षण भर में ही उसके मन में तमाम कल्पनाएँ गूँजने लगती हैं। सबसे पहले दादी का ख्याल आता है–"दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती है, तो हाथ जल जाता है, अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी? फिर उनकी उंगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जायेगी। खिलौने से क्या फायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा देर ही तो खुशी होती है।''[11]

बड़ा मार्मिक दृश्य है यहाँ ! बालक हामिद खड़ा होकर चिमटे की कल्पना में खोया है। वह चिमटे की उपयोगिताओं के बारे में सोच रहा है–"चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हें में सेंक लो। कोई आग माँगने आवे तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दो दो।''[12]

इसके साथ-साथ वह खिलौने और मिठाइयों की बुराइयाँ भी कर रहा है। अब उसे दोस्तों की उपेक्षा की चिन्ता नहीं। अपने निर्णय पर वह मन-ही-मन गर्व कर रहा है–"अम्मा चिमटा देखते

ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी–मेरा बच्चा अम्मा के लिए चिमटा लाया है। हजारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखायेंगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है इन लोगों के खिलौने पर कौन तुम्हें दुआएँ देगा।''[13]

हामिद में साहस की कमी नहीं है।। वह अपने चिमटे के पक्ष में ऐसे-ऐसे तर्क गढ़ता है कि उसके दोस्तों को हथियार डाल देना पड़ता है–**'अब तो चिमटा रूस्तमे-हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह'**[14] अंत का प्रसंग बड़ा भावुक है। चिमटा को देखकर अमीना माथ पीट लेती है। हामिद को इससे अपराध बोध-सा लगता है। वह भोलेपन के साथ जवाब देता है–''तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं, इसलिए मैंने इसे ले लिया।''[15]

बालमन की कोमल-संवेदना यहाँ साकार हो उठी हैं। प्रेमंचद हामिद के लिए टिप्पणी करते हैं "बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर उसका मन कितना ललचाया होगा। इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी उसे अपनी बुढ़ी दादी की याद बनी रही।''[16] बच्चे ने बूढ़ी दादी को इतना प्रभावित किया कि अंत में अमीना स्वयं बच्चा बन जाती है, उसकी आँखें भर आती हैं, लेकिन वह हामिद को दुआएँ देती जाती है।

'ईदगाह' कहानी पर आलोचकों द्वारा एक बड़ा आरोप लगता रहा है कि प्रेमचंद ने हाकिम का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण किया है। चार-पाँच साल का बालक भला चिमटा कैसे खरीद सकता है? इतनी अक्ल उसमें कहाँ से आएगी? इस प्रश्न का जवाब देने के लिए, बाल मनोविज्ञान की सहायता लेनी पड़ेगी। बाल मनोवैज्ञानियों का मानना है कि "बालक दिन-प्रतिदिन नई समस्याओं से जूझता है एवं अप्रत्याशित समस्याओं का हल भी अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त कर लेता है.....बालक जितना तीव्र गति से समस्या को समझेगा उतनी ही तीव्र गति से समस्या का हल भी निकलेगा। लगातार इस प्रकार की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने में बालक के व्यवहार में स्वाभाविक परिवर्तन आता है। वह अपनी अवस्थाओं के अनुरूप समस्याओं का हल खोजता है। इतना अवश्य है कि कुछ बालक उम्र से पहले ही इस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।''[17] वस्तुतः हमारे समाज में बच्चों को जितना बच्चा समझा जाता है, उन्हें अगंम्भीर एवं बुद्धिहीन माना जाता है, बच्चे उतने अबोध एवं नादान नहीं होते। 'किशोर साहित्य की संभावनाएँ' पुस्तक में, अपने एक लेखक के अन्तर्गत्त श्री रमेश आजाद ने अमेरिका के जाने-माने शिक्षाशास्त्री गैरेथवी को उद्घृत किया है। मैथ्यूज साहब का स्पष्ट कहना

है कि बच्चों में वयस्कों की तरह गम्भीर माने जाने वाले सवालों पर विचार करने की क्षमता होती है। बच्चों के गम्भीर सवालों पर हमें चकित होने की जरूरत नहीं हैं और न ही इसे दार्शनिक विषय मानकर छोड़ देने की जरूरत है। बच्चों की दुनिया हमसे कहीं छोटी नहीं है, उनकी कल्पनाशीलता और वास्तविकता जानने-समझने या उन पर सवाल करने की क्षमता भी कम नहीं है।''[18]

'ईदगाह' का नायक भले ही चार-पाँच साल का है, लेकिन वह बचपन से ही अपनी दादी को रोटी बनाते हुए देखता है। उसके मन-मस्तिष्क में यह बात बैठी चुकी है कि दादी का हाथ जलता है। दूसरी बात, **'तीन पैसे'** उसे बड़ी मुश्किल से दादी द्वारा मिले हैं। इसी कारण वह इसे खिलौनों और मिठाइयों में बर्बाद करना नहीं चाहता। वह इनकी बुराइयाँ करता है। अत: हामिद का चिमटा खरीदना बिल्कुल ही अस्वाभाविक नहीं लगता। हाँ चिमटे को लेकर हामिद की कल्पना तथा उसके पक्ष में दिया गया तर्क देखकर यह जरूर लगता है कि जाने-अनजाने प्रेमचंद हामिद के अन्दर प्रविष्ट कर गये हैं। बाल हृदय पर वयस्क लेखक का मन सवार है जाता है। इसी कारण हामिद की शब्दावलियाँ उसकी न लगकर लेखक की लगती हैं। चार-पाँच साल के बालक द्वारा इस तरह के तर्क देना थोड़ा सोचने पर मज़बूर तो करता ही है।

बहरहाल **'ईदगाह'** हामिद एक कालजयी बाल पात्र है और **'ईदगाह'** बाल मनोविज्ञान की श्रेष्ठ कहानी। हिन्दी की जानी-मानी लेखिका सुधा अरोड़ा **'कथादेश'** पत्रिका में अपने एक लेख में बिल्कुल ठीक लिखती हैं कि "ईदगाह में जहाँ एक त्यौहार में शरीक होने का बाल-सुलभ उछाह तो है ही, साथ ही धर्म और जाति की सीमाओं से ऊपर मानवता के शाश्वत मूल्यों को रेखांकित करने की महीन-सी समझ भी है, जो आकस्मिक हरगिज़ नहीं है। ईद के मेले में **'ईदी'** के सारे पैसे अपनी बूढ़ी दादी के लिए चिमटा खरीदने पर खर्च कर डालने वाला नन्हा हामिद हमें इस दुनिया की तमाम जोड़-तोड़ और गैर इन्सानियत के विरोध में खड़े एक प्रेरणादायक महानायक के रूप में दिखाई देता है। लेकिन इसके बावजूद **'ईदगाह'** उपदेश नहीं देती, और यही इस कहानी की महानता है।''[19]

कजाकी

'कजाकी' संस्मरण शैली में लिखी हुई कहानी है। इसमें लेखक अपने बचपन की स्मृतियों में संचित कजाकी (जो डाक-विभाग में एक मामूली कर्मचारी है) का चरित्र-चित्रण करता है। इस

कथा-यात्रा में लेखक का अपना बचपन एवं उसका बालक रूप भी साकार हो उठता है। लेखक को कजाकी से बेहद लगाव था। तभी तो वह उसे अब तक नहीं भूल पाया है–"मेरी बाल-स्मृतियों में **'कजाकी'** एक न मिटने वाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुजर गए; कजाकी की मूर्ति अभी तक आँखों के सामने नाच रही है।"[20] बचपन में बालमन को जो चीज़ें प्रभावित कर जाती हैं, जीवन भर साथ रहती हैं। चाहे वे कोई व्यक्ति हो, वस्तु हो, घटना हो अथवा कोई प्रवृत्ति हो। बच्चे स्नेह के भूखे होते हैं। गोद के निरे अबोध शिशु को जब हम चुटकी बजा कर अपनी ओर आकर्षित करते हैं, और प्यार दर्शाते हैं, तो वह तत्क्षण हाथ-पाँव पटकते हुए प्रसन्न हो जाता है। यही हाल बालकों का है। बच्चे अपने माँ-बाप की अपेक्षा दादा-दादी या नाना-नानी के पास अधिक रहना चाहते हैं। वहाँ वे अधिक स्वतंत्रता और खुशी का अनुभव करते हैं। वहाँ बच्चों को केवल प्यार मिलता है। कजाकी के साथ भी लेखक का कुछ ऐसा ही संबंध था। पिता उसे प्यार नहीं करते। अम्मां प्यार तो करती थीं, में बंदिशें भी लगाती थीं। लेकिन कजाकी केवल प्यार करता था। बालकों को और क्या चाहिए। मनोवैज्ञानियों का भी यही मानना है–"बच्चा उसी व्यक्ति से अत्यधिक स्नेह रखता है जो उसके साथ खेलता हो, जो उसकी संतुष्टि के लिए निरंतर प्रयासरत हो। बच्चों का स्नेह उन व्यक्तियों पर केन्द्रित हो जाता है, जो उसे प्रेम की अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर देते है। उपरोक्त विभिन्न कारणों से बच्चों का स्नेह परिवार जनों एवं गैर परिवार जनों के प्रति जिनसे उनका कोई खून का रिश्ता नहीं होता है, इस बात पर निर्भर रहता है कि वे लोग उसके प्रति कैसा व्यवहार करते हैं, उनके साथ रहकर वह खुश रह पाता है या नहीं या वे उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं या नहीं।"[21]

कजाकी लेखक के लिए स्नेह का स्तम्भ था, उसे पाकर लेखक को जैसे सारा जहाँ मिल जाता था। कजाकी से इस बालक की इतनी अनुरक्ति के पीछे कुछ ठोस कारण भी थे। बच्चे यूँ ही किसी की ओर नहीं लपकते। कहानी सुनाना, घुमाना, साथ खेलना, गाने सुनाना आदि वे साधन थे, जिसने बालक को कजाकी के इतना निकट ला दिया था। लेखक लिखता है–"थैला रखते ही वह हम लोगों को लेकर किसी मैदाान में निकल जाता, कभी हमारे साथ खेलता, कभी बिरह गाकर सुनाता और कभी कहानियाँ सुनाता। उसे चोरी और डाके, मार-पीट, भूत-प्रेत की सैंकड़ों कहानियाँ याद थीं। मैं ये कहानियाँ सुनकर विस्मयपूर्ण आनंद में मग्न हो जाता; उसकी कहानियों के चोर और डाकू सच्चे योद्धा होते थे, जो अमीरों को लूट कर दीन-दुखी प्राणियों का पालन करते थे। मुझे

उन पर घृणा के बदले श्रद्धा होती थी।''[22]

कजाकी से बालक का बेपनाह स्नेह है। उसके पिता ने जब कजाकी को नौकरी से निकाल दिया तो लेखक का बालहृदय भग्न हो गया। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर नन्हें मन में अपने पिता के प्रति रोष उत्पन्न हो गया। बाल मन अपने प्रिय का अहित नहीं देख सकता 'आह! उस वक्त मेरा ऐसा जी चाहता था कि मेरे पास सोने की लंका होती तो कजाकी को दे देता और बाबूजी को दिखा देता कि आपकें निकाल देने से कजाकी का बाल भी बाँका नहीं हुआ।''[23] बच्चा गृह-मंत्रालय में पहुँचा और सीधे अंतिम अस्त्र का प्रयोग करते हुए विलाप कर रोने लगा। उसने अम्मां से कजाकी के बचाव के पक्ष में सारी दलीलें दीं। रात में भी उसका चित्त शांत नहीं था। यह बाल हृदय है–निश्चल, कोमल, अबोध, दयालु, करुणामयी, नादान और प्यारा! वह रात में कजाकी की जीविका का विकल्प ढूँढ़ने में लगा रहा–"बड़ी रात तक पड़े-पड़े सोचता रहा–मेरे पास रुपए होते, तो एक लाख रुपए कजाकी को दे देता और कहता बाबूजी से कभी मत बोलना।''[24] बालक की कोमल संवेदनाएँ उभर आई हैं यहाँ।

कजाकी को नौकरी से निकाला जा चुका है। लेकिन बालक अभी रोज की तरह शाम होते ही सारे जंजाल छोड़कर कजाकी की प्रतीक्षा में खड़ा हो जाता। दिन भर तो वह मुन्नू के साथ खेलता लेकिन शाम में उसे भी छोड़ देता। बच्चा स्वार्थी नहीं है। उसे कजाकी की बेहद चिंता है। यह होती है बच्चों के अंदर की उनकी सूझ, जिसे बड़े नहीं समझ पाते। प्रेमचंद बालमन के पारखी हैं। वे सब समझते हैं। तभी तो बालक को कजाकी के भूख का भी ख्याल है। वह उसके लिए टोकरी में आटा लाता है। नमक, दाल, घी के लिए अपनी संचित संपत्ति (जमा किए हुए कुछ रोजगारी) को लाकर उसे दे देता है। कजाकी के लिए वह कुछ भी करने को तैयार था–"कजाकी को रोज बुलाने के लिए उस वक्त मेरे पास कोहिनूर हीरा भी होता, तो उसको भेंट करने में मुझे पसोपेश न होता।''[25] अगले दिन जब कजाकी नहीं आया तो बालक निराश एवं दुखी होकर फिर रोने लगा। अम्माँ के आश्वासन पर वह रोते-रोते सो गया, लेकिन आँख खुलते ही पुन: वही रट-'कजाकी' यही बच्चों का जुड़ाव है। एक बार जुड़ गया, फिर तो सारी दुनिया एक तरफ और बालकों का प्रिय व्यक्ति का प्रिय वस्तु एक तरफ।

कहानी में जब कजाकी की वापसी होती है तभी बालक की वास्तविक खुशी लौटती है और उसका जीवन पूर्ववत् चलने लगता है। कजाकी के जाने के बाद उसे निर्दोष साबित करने, उसकी

मदद करने एवं पुन: उसकी वापसी कराने में बच्चा लगातार लगा रहता है। उसका बालमन हार नहीं मानता और अंतत: उसे सफलता भी मिलती है। 'रामलीला' कहानी में भी रामचन्द्र की मदद करने के लिए बालक लगातार जुटा रहता है। कई बार उसे निराशा मिलती है, लेकिन अंत में दो आने से ही सही, किंतु रामचन्द्र की विदाई की रस्म पूरी करता ह। प्रेमचंद अपने बाल पात्रों को हारने या झुकने नहीं देते, लगातार संघर्ष में लगाए रखते हैं। यह प्रेमचंद की विशेषता है।

'कजाकी' में बालक का स्वाभाविक चरित्र रुपायित हुआ है। बच्चों का पशुओं के साथ रागात्मक संबंध की बानगी इस कहानी में भी मिलती है। हिरण को पहली बार गोद में लेने का एहसास कितना दिव्य है–"आह ! मेरी उस खुशी का कौनअनुमान करेगा? तब से कठिन परीक्षाएँ पास की, अच्छा पद भी पाया, राय बहादुर भी हुआ; पर वह खुशी फिर न हासिल हुई। मैं उसे गोद में लिए उसके कोमल स्पर्श का आनंद उठाता घर की ओर दौड़ा। कजाकी को आने में क्या इतनी देर हुई इसका ख्याल ही न रहा।''[26] हिरण को पाते ही बालमन आनंद के सागर में गोते लगाने लगा। हिरण को लेकर वह दिन भर उसी में व्यस्त रहा। उसका नाम 'मुन्नू' रखा। अपने दोस्तों से उसका परिचय कराया। यहाँ तक कि आजीवन उसे अपने साथ रखने तक की योजना उसकी कल्पना में आ गई। हिरण को भी बालक से तनिक भी कम लगाव नहीं था। लेखक कहता है–"मुन्नू मेरी ही थाली में खाता था। जब तक मैं खाने न बैठूँ, वह भी कुछ न खाता था। उसे भात से बहुत रूचि थी, लेकिन जब तक खूब घी न पड़ा हो, उसे संतोष न होता था। वह मेरे ही साथ सोता था और मेरे ही साथ उठता भी था।''[27] बच्चे तो कपड़े या प्लास्टिक के बने हुए कुत्ते, बिल्ली, खरगोश एवं गुड्डे, गुड़ियों को भी साथ रखते हैं और उन खिलौनों को अपने साथ सुलाते हैं। यहाँ तो जीता-जागता चुनमुन-सा हिरण है।

बच्चों का क्रोध, हँसी, रूदन कुछ भी स्थायी नहीं होता। कजाकी की नौकरी छीन जाने पर बच्चा अम्माँ के सामने निरंतर आँसू बहा रहा है। तभी हिरण को देखकर अम्मां डर जाती है और यह दृश्य देखते ही बच्चा रोना भूलकर जोर-जोर से हँसने लगता है। बच्चों को जैसे खिलौनों से प्रेम होता है, वैसे ही मिठाई आदि अपनी मनपसंद चीज़ों से भी। कजाकी के वियोग में बालक सारे प्रयास करता है, पर खाना नहीं छोड़ता। यहाँ लेखक की टिप्पणी है–"बच्चे शोक में खाना नहीं छोड़ते खासकर जब खड़ी भी सामने हो।''[28]

'ममता' कहानी में बाबू रामरक्षादास का छोटा लड़का अपने पिता के मुख से मार खाने की

बात सुनकर रोता हुआ अंदर जाता है और देर तक रोता रहता है। प्रेमचंद यहाँ लिखते हैं, "अंत में तश्तरी में रखी हुई दूध की मलाई ने उसकी चोट पर मरहम का काम किया।''[29] **'बूढ़ी काकी'** कहानी के अंत में जब बूढ़ी काकी को रूपा खाना लाकर देती है तो उस स्थिति की उपमा प्रेमचंद बच्चों की इसी प्रवृत्ति से देते हैं–"भोले-भोले बच्चों की भांति, जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थी।''[30]

कजाकी की पत्नी जब लेखक के लिए कमलट्टे लेकर आई तो अपना प्रिय खाद्य पदार्थ देखते ही बच्चे का धैर्य चुक गया। कितना प्यारा दृश्य है! लेखक बताता है "मैंने पोटली से कमलगट्टे. निकाल लिए थे और मजे से चख रहा था। अम्माँ ने बहुत आँखें दिखायीं, मगर यहाँ इतनी सब्र कहाँ! ''[31] बालपन इसे ही तो कहते हैं और प्रेमचंद इसकी नस-नस से वाकिफ हैं।

'कजाकी' में एक रोचक प्रसंग आया है, जो बालकों की एक प्रमुख प्रवृत्ति का परिचय पेश करता है। कई बार बच्चे जब माँ-बाप से छुपाकर कोई काम करते हैं। (जैसे किसी को कोई वस्तु देना, कुछ छुपा देना, मिठाई आदि चुरा कर खाना या गलती से किसी चीज़ को तोड़ देना आदि) तो माँ-बाप के द्वारा पूछने पर तत्काल झूठ बोल देते हैं। प्रथम बार उनके मुँह से तत्क्षण **'ना'** ही निकलता है। कुछ समय बाद वही बच्चे दबाव में आकर प्यार से या पश्चाताप स्वरूप सच उगल देते हैं। श्रीकृष्ण के बाललीला वर्णन में ऐसे कई प्रसंग आए हैं। सूरदास का पद 'मैया मोरी मैं, नहि माखन खायो।' बालकों की इसी मनोवृत्ति पर आधारित है।

'कजाकी' में लेखक कजाकी के लिए एक टोकरी आटा निकाल कर बाहर ले जाता है। टोकरी में जमीन पर गिर रहे आटे की लकीर का उसे पता ही नहीं है। अम्माँ के पूछने पर वह साफ झूठ बोल देता है। लेकिन अम्माँ जब साक्ष्य दिखाती हैं, तो हजरत की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है। अब मार का डर इतना है कि सच उगलते नहीं बन रहा। लेकिन जब अम्मां स्वयं कजाकी को आटा देती है, तो बालक में हिम्मत आ जाती है और वह सारा वृत्तांत कह डालता है। लेखक माँ-बाप के लिए यहाँ एक जरूरी बात बताता है, जो उसने अपने बचपन में अनुभव किया था–"बच्चों के साथ समझदार बच्चे बनकर, माँ-बाप उन पर जितना असर डाल सकते हैं, जितनी शिक्षा दे सकते हैं, उतने बूढ़े बनकर नहीं।''[27]

'कजाकी' में कई जगह बालक की निष्कपटता देखने लायक है। वह कोमल हृदय का बालक, कजाकी के नमक, दाल, घी के लिए अपने जमा पैसे लाकर देता है। ये पैसे उसे पर्याप्त से कुछ

अधिक ही लगते हैं। "मैंने सोचा–दाल, नमक और घी के लिए क्या उतने पैसे काफी न होंगे? मेरी तो मुट्ठी में नहीं आते।''[33] कजाकी द्वारा पैसों के बारे में पूछे जाने पर वह बड़े गौरव के साथ कहता है–"मेरे ही तो हैं।'' कजाकी की पत्नी जब कमलगट्टे लेकर आती है, तो उसे देखकर बालक को कौतूहल होता है। कितने प्यारे वाक्य हैं–"मैंने उसके पास जाकर उसका मुँह देखते हुए कहा–तुम कौन हो? क्या बेचती हो?

मैंने उसके हाथों से लटकती हुई पोटली को उत्सुक नेत्रों से देखकर पूछा–कहाँ से आयी हो? देखें।''[34]

एक तो कमलगट्टे, ऊपर से कजाकी ने भेजे हैं, बालक को अब सब्र कहाँ! अम्मा ने लाख ध मकाया, परन्तु वह तो मजे में उड़ाए जा रहा था। **'कजाकी'** में एक स्थान पर प्रेमचंद का यह कहना कुछ ठीक नहीं लगता कि दो-तीन दिन तक कजाकी के नज़र न आने पर बालक उसे भूलने लगा। प्रेमचंद तर्क देते हैं–"बच्चे पहले जितना प्रेम करते हैं, बाद को उतने ही निष्ठुर हो जाते हैं। जिस खिलौने पर प्राण देते हैं, उसी को दो-चार दिन के बाद पकड़कर फोड़ भी देते हैं।''[35]

आश्चर्य है, जो बालक कजाकी से इतना हिला-मिला है, कजाकी को देखते ही जो अपनी सुध-बुध खो बैठता है और कजाकी के जाने के बाद लगातार रोता है, वह दो-तीन दिन बाद ही उसे कैसे भूलने लगेगा? लेखक ने यहाँ एक और असंगति पैदा की है। कजाकी की तुलना खिलौने से की है। खिलौने निर्जीव होते हैं और एक के टूटने के बाद दूसरे आ जाते हैं। हर खिलौने से ज्यादा अच्छा दूसरा खिलौना मिल सकता है। लेकिन कजाकी मनुष्य है और वह दस-बारह नहीं हो सकता। कम से कम उस बालक के लिए तो एक ही कजाकी है, उसका स्थान कौन लेगा? अत: लेखक का यह तर्क कम विश्वसनीय लगता है एवं बालक द्वारा दो-तीन दिन बाद ही कजाकी को भूलने लगना भी कुछ सच प्रतीत नहीं होता। प्रेमचंद की **'महातीर्थ'** कहानी में रुद्रमणि 'अन्ना' के लिए कई दिनों तक पागल रहता है और बीमार पड़ जाता है। बहरहाल, **'कजाकी'** में बाल मनोविज्ञान का सजीव विश्लेषण बड़े ही कौशल के साथ किया गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

रामलीला

'रामलीला' प्रेमचंद की एक और प्रसिद्ध रचना है। बचपन में जो रामलीला लेखक की संवेदना से जुड़ रही, बड़े होने पर मात्र उसकी स्मृतियों का अंग बनकर रह गई है। बचपन में

रामलीला देखना लेखक के लिए किसी उन्माद से कम न था। बच्चे खेल-तमाशे के दीवाने होते हैं, ऊपर से रामलीला का तो कहना ही क्या ! पात्रों की सजावट से ही लेखक की सक्रियता आरंभ हो जाती थी। वह दोपहर में ही वहाँ जा बैठता था। लेकिन केवल तमाशा देखना ही उसका लक्ष्य नहीं था, वह कुछ श्रमदान भी करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना, क्या कम महत्वपूर्ण काम है? बालक इन्हें चाव से करता था–"जब इन तैयारियों के बाद विमान निकलता, तो उस पर रामचन्द्र जी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठ कर भी नहीं होता।''[36]

बालकों में इन सब चीज़ों के प्रति विशेष उत्साह होता है। लेखक का पात्रों की सजावट में सहयोग करना इसी उत्साह का हिस्सा है। निषाद-नौका-लीला देखने के लिए वह गुल्ली डंडा का खेल बीच में ही छोड़कर चला आता है, जबकि इस खेल में 'पदाना' ही मुख्य होता है। लेकिन निषाद-नौका-लीला के सामने कुछ नहीं चलेगा। बालक के नाले तक पहुँचते ही नौका खुल चुकी थी। वह रामचन्द्र के साथ में जाना चाहता था। लेकिन असफल रहा। अब वह बेचैन हो उठा–"मैं विकल होकर उस बछड़े की भांति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ रखा गया हो। कभी लपक कर नाले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ दौड़ता, पर सबके सब अपनी धुन में मस्त थे; मेरी चीख-पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तब से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ झेली; पर उस समय जितना दु:ख हुआ, उतना फिर कभी न हुआ।''[37]

बालक का दिल टूट गया, वह उदास हो गया। रामचन्द्र ने उसकी ओर देखा तक न था, इस उपेक्षा ने बालमन में रोष पैदा कर दिया–"मैंने निश्चय किया था कि अब रामचन्द्र से न कभी बोलूँगा, न कभी खाने की कोई चीज़ ही दूँगा; लेकिन ज्यों ही नाले को पार करके वह पुल की ओर लौटे; मैं दौड़कर विमान पर चढ़ गया, और ऐसा खुश हुआ, मानो कोई बात ही न हुई थी।''[38] यह उत्सुकता, यह कौतुहल, यह अनुराग, यह भोलापन बालकों की दुनिया में ही मिल सकता है। प्रेमचंद इस दुनिया के यायावर थे।

बालक के मन में रामचन्द्र के प्रति गहरा अनुराग था और श्रद्धा भी–"रामचन्द्र पर मेरी कितनी श्रद्धा की अपने पाठ की चिंता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिसमें वह फेल न हो जायँ। मुझसे उम्र ज्यादा होने पर भी वह नीची कक्षा में पढ़ते थे।''[39] लेकिन बात केवल इतनी ही नहीं थी। लेखक के रामचन्द्र से सच्चा अनुराग था–"घर पर मुझे खाने को कोई चीज़ मिलती, वह

लेकर रामचन्द्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनंद मिलता था, उतना आप खा जाने में कभी नहीं मिलता। कोई मिठाई या फल पाते ही मैं बेतहाशा चौपाल की ओर दौड़ता। अगर रामचन्द्र वहाँ न मिलते, तो उन्हें चारों ओर तलाश करता, और जब तक वह चीज़ उन्हें न खिला लेता, मुझे चैन न आता था।''[40]

रामलीला के अंतिम प्रसंग राजगद्दी के समय रामचन्द्र की ओर कोई ध्यान न देता था। यह इस स्वार्थी भौतिकवादी समाज की भयावह सच्चाई है। जब तक स्वार्थ है, लोग चिपके रहते हैं। किसी को रामचन्द्र की तनिक भी चिन्ता न थी, लेकिन बालक को थी। बच्चों के अन्दर कितनी दया, ममता, अनुराग, करुणा एवं आस्था होती है; इसका परिचय इस कहानी से बखूबी मिलता है। रामचन्द्र की आरती में जब लेखक के पिता ने एक भी पैसा नहीं दिया, तो लेखक शर्म से गड़ गया। बाल हृदय स्वयं को रोक नहीं पाया और उसने अपना चिर संचित एक रुपया आरती की थाली में डाल दिया। यह रुपया बालक ने दशहरे के मेले में भी खर्च न किया था। यह त्याग, यह मानवता, यह निष्ठा, प्रेमचंद अपने बाल पात्रों में ढूँढ़ निकालते हैं। रामचन्द्र की विदाई के दिन बालक सुबह उठते ही आंख मींचता हुआ चौपाल की ओर भागा। इस उतावलेपन में उसे अपने किसी काम की सुध न रही। वह हाँफता हुआ रामचन्द्र के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही बालक ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। रामचन्द्र को विदाई में एक धेला तक न मिला था। यह सुनकर बालक का मन आक्रोश से भर उठा।

बाल मनोविज्ञानियों के अनुसार–"बच्चा जो कुछ भी जानता समझता है, उस सबको अपने दिल में लगाता है.....बुराई देखकर उसका हृदय आक्रोश से भर उठता है, वह उसे सह नहीं सकता है, उसमें सच्चाई एवं न्याय के हेतु संघर्ष करने के लिए आत्मिक शक्ति का संचार होता है।''[41] बच्चा अपने पिता के पास भी गया, जिन्होंने वेश्या को गर्व के साथ एक अशर्फी दी थी। लेकिन पिता की उपेक्षा पाकर उसे गहरा रोष हुआ और बालक का मन टूट गया।

कहानी के अंत में भी बालक ने खर्च के दो आने पैसे विदाई के रूप में देकर स्वयं रामलीला के इस अंतिम रस्म को पूरा किया। वह अकेला ही उन तीनों (रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता) को कस्बे तक छोड़ने गया। प्रेमचंद लिखते हैं–"उन्हें विदा करके लौटा, तो मेरी आँख सजल थीं; पर हृदय आनंद से उमड़ा हुआ था।''[42] यहाँ आते-आते बालक के चरित्र का उदात्त स्वरूप पूर्णत: खुल गया है। मात्र रामलीला के कारण बालक, रामचन्द्र से इस कदर जुड़ जाता है कि उसके लिए

क्या-क्या नहीं करता? दूसरी तरफ बड़ों का चरित्र है, जिसमें चौधरी एवं स्वयं बच्चे का बाप भी है। ये सब समाज की पतनशीलता के पुतले हैं। कहानी में बच्चा अकेला चरित्त नायक बनकर उभरता है, जो मानवीय गुणों से परिपूर्ण है।

रामचन्द्र भी लड़का ही है। वह अभावग्रस्त परिवार का है। रामलीला में भूमिका करने के पीछे उसकी आर्थिक समस्या है। यह कितना मार्मिक प्रसंग है, जब वह कहता है–"मैंने सोचा था, कुछ रुपये मिल जायँगें तो पढ़ने की किताबें ले लूँगा।''[43] समाज के प्रतिष्ठित लोगों की हालत यह है कि वे कई दिनों तक राम के नाम पर श्रद्धा दिखाकर धन्धा चलाते हैं और वेश्याओं पर पैसे लुटाते हैं, लेकिन रामचन्द्र को फूटी कौड़ी भी नहीं देते।

अपने परिवेश का प्रभाव बच्चों पर सबसे अधिक पड़ता है। वस्तुत: "बच्चों के सामने बहुमुखी संसार होता है, जिसमें वे अन्तर्विरोध और जटिलताएँ, सौन्दर्य और कुरूपता, सुख और दु:ख देखते हैं। चारों ओर के संसार में जो कुछ भी होता है, अतीत और वर्तमान में जो कुछ लोगों के जीवन का आधार है, उसे बच्चा भलाई और बुराई में बाँटता है।''[44] आबादीजान का नाच देखकर बालक की तबियत भी झूम उठती है। यहाँ फ्रायड को याद करना पड़ेगा। बच्चों के अंदर भी 'ऐसथैटिक सेंस' होता है। बालक, वेश्या आबादीजन की पैसे ऐंठने की अदा को अच्छी तरह समझ रहा है। बाप को अपनी आँखों के सामने भरी महफिल में अशर्फी देते देखकर बालक का मन आत्मग्लानि से भर उठता है। यह घटना वह अपनी अम्मां को भी नहीं बताता है। बालक में इतनी सूझ है कि परायी स्त्री (वेश्या) को भरी सभा में पिता द्वारा पैसे देने की बात उसकी माँ को आहत करेगी।

प्रेमचंद की कहानियों में पुत्र के प्रति पिता का व्यवहार प्राय: कठोर रहा है। बच्चे का माँ के प्रति जितना लगाव होता है, पिता के प्रति नहीं। बालक का पिता पुलिस में है। वह बिना पैसे दिए ही आरती उतारता है, वेश्या को अशर्फी देता है और रामचन्द्र की विदाई के लिए वह दो रूपया तक देने को तैयार नहीं होता, उल्टे निष्ठुरता से पेश आता है। उसी दिन से लेखक की श्रद्धा अपने पिता पर से हमेशा के लिए उठ जाती है।

संदर्भ सूची

1. मानसरोवर, भाग-1, पृ० सं० 28

2. वही, पृ० सं० 28
3. वही, पृ० सं० 29
4. वही, पृ० सं० 29
5. वही, पृ० सं० 30
6. वही, पृ० सं० 31
7. प्रेमचंद, मानसरावेर, भाग-5, पृ० सं० 95
8. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-1, पृ० सं० 31
9. वही, पृ० सं० 33
10. वही, पृ० सं० 27
11. वही, पृ० सं० 32
12. वही, पृ० सं० 32
13. वही, पृ० सं० 33
14. वही, पृ० सं० 35
15. वही, पृ० सं० 37
16. वही, पृ० सं० 37
17. शशी चित्तौड़ा एवं हरिश्चन्द्र नरसावत, शिशु एवं बालमनोविज्ञान, पृ० सं० 166
18. सं०-देवेन्द्र कुमार देवेश, किशोर साहित्य की संभावनाएँ, पृ० सं० 181
19. कथादेश, जून 1999, पृ० सं० 48
20. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5, पृ० सं० 109
21. शशी चित्तौड़ा एवं हरिश्चन्द्र नरसावत, शिशु एवं बाल मनोविज्ञान, पृ० सं० 102
22. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5, पृ० सं० 109
23. वही, पृ० सं० 111
24. वही, पृ० सं० 112
25. वही, पृ० सं० 114
26. वही, पृ० सं० 110

27. वही, पृ० सं० 118
28. वही, पृ० सं० 112
29. वही, पृ० सं० 200
30. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-8, पृ० सं० 114
31. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5, पृ० सं० 117
32. वही, पृ० सं० 115
33. वही, पृ० सं० 114
34. वही, पृ० सं० 116
35. वही, पृ० सं० 116
36. वही, पृ० सं० 28
37. वही, पृ० सं० 29
38. वही, पृ० सं० 29
39. वही, पृ० सं० 29
40. वही, पृ० सं० 29
41. वसीली सुखोम्लीन्स्की, बाल हृदय की गहराइयाँ, पृ० सं० 280
42. प्रेमचंद, मानसवरोवर, भाग-5, पृ० सं० 33
43. वही, पृ० सं० 32
44. वसीली सुखोम्लीन्स्की, बाल हृदय की गहराइयाँ, पृ० सं० 280

चोरी

'रामलीला' एवं **'कजाकी'** की तरह **'चोरी'** कहानी भी प्रेमचंद के बचपन के दिनों की दास्तान है। इसमें लेखक ने मनोरंजक शैली में बच्चों के स्कूल वाले दिनों की मौज-मस्ती, चंचलता एवं शरारतों का बड़ा ही हृदयग्राही चित्र खींचा है। प्रेमचंद के मन-मस्तिष्क में बचपन इस तरह रचा-बसा है कि वे उसे भूल नहीं पाते। बार-बार वे बालपन के दिनों की कथा बताते नहीं थकते–"हाय बचपन ! तेरी याद नहीं भूलती ! यह कच्चा, टूटा घर, यह पुवाल का बिछौना, वह नंगे बदन, नंगे पाँव खेतों में घूमना, आम के पेड़ों पर चढ़ना सारी बातें आँखों के सामने फिर रही हैं। चमरौधे जूते पहनकर उस वक्त कितनी खुशी होती थी, अब 'फ्लेक्स' के बूटों से भी नहीं होती। गरम पनुए रस में जो मजा था, वह अब गुलाब के शर्बत में भी नहीं, चबेने और कच्चे बेरों में जो रस था, वह अब अंगूर और खीर मोहन में भी नहीं मिलता।"[1]

बचपन में अपने चचेरे भाई हलधर के साथ मिलकर बिताए गए उमंग भरे दिनों को इस कहानी में रोचक अंदाज में पिरोया गया है। बचपन में शरारतें करना, बहानेबाजी, झूठ बोलना, घर में छोटी-मोटी चोरी करना, मटरगस्ती करना, यह सब कहानी के अंग हैं। अक्सर मस्तमौला विद्यार्थी स्कूल के समय चुहलबाजियाँ करते हैं। **'चोरी'** में लेखक एवं हलधर भी इसी श्रेणी के लड़के हैं। स्कूल में उपस्थिति के प्रति कोई सख्ती नहीं थी, फलत: "कभी तो थाने के सामने खड़े सिपाहियों की कवायद देखते, कभी किसी भालू या बन्दर नचाने वाले मदारी के पीछे-पीछे घूमने में दिन काट देते, कभी रेलवे स्टेशन की ओर निकल जाते और गाड़ियों की बहार देखते हैं।"[2]

बच्चों की चुहलबाजियों का कोई निश्चित नियम नहीं होता। वे कुछ भी कर सकते हैं, जिसमें उन्हें मजा आए। बाग-बगीचे का काम भी चलेगा–"कहीं बाल्टी लिये पौधों को सींच रहे हैं, कहीं खुरपी से क्यारियाँ गोड़ रहे है, कहीं कैंची से बेलों की पत्तियाँ छाँट रहे हैं। उन कामों में कितना आनन्द था।"[3]

वस्तुत: बच्चों को अपने मन लायक काम मिल जाए, फिर उन्हें कुछ नहीं चाहिए। वे उत्साहित होकर काम करते हैं और इसमें उन्हें असीम आनंद की अनुभूति होती है। बालमनोविज्ञानी इसे बच्चों की सृजनप्रतिभा मानते हैं। हर बच्चे में सृजनात्मकता होती है। यदि उसे जाग्रत नहीं किया जाए तो वह कुंठित होती जाती है। कुछ करते रहने से ही बच्चों में सृजनात्मकता का विकास होता है। हमारे समाज में बचपन को केवल खेलने-कूदने की उम्र माना जाता है। बच्चों से काम लेने के बारे में तो कोई सोच ही नहीं सकता। प्रेमचंद स्वयं इसके बड़े विरोधी थे। वे बच्चों में स्वाधीनता की भावना पैदा करने हेतु श्रम को आवश्यक समझते थे। उनका मानना था कि बालकों

में आरंभ से ही कुछ न कुछ करने रहने की आदत डालना बेहद जरूरी है। विचारकों की मान्यताओं का समर्थक करते हुए वे स्वयं कहते हैं–"लड़कों को अपने हाथ से, अपने उद्योग से, कोई काम कर दिखाने में या कोई चीज़ बनाकर खड़ी कर देने में जितना आनंद मिलता है, उतना और किसी बात में नहीं। लड़का अपनी कागज़ की नाव पानी में डालकर जितना खुश होता है, उतना बड़े-बड़े विशाल जहाजों को चलते देखकर नहीं होता"[4] इस कहानी में लेखक ने इसी सिद्धान्त को मूर्त्त रूप दिया है

'बच्चों को स्वाधीन बनाओ' नामक टिप्पणी में प्रेमचंद ने इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। उन्होंने यह जोर देकर कहा है कि बच्चों में उनकी स्वाभाविक रचनात्मकता को जगाना अत्यन्त आवश्यक है। इससे बालकों में आत्मविश्वास बढ़ता है। यह काम पुस्तक और उपदेश भी नहीं कर सकते।

'चोरी' कहानी में लेखक ने माली को 'बाल प्रकृति का पंडित' कहा है। माली को बालकमन की गुत्थियों का ज्ञान था। बच्चों को बहला-फुसलाकर, उन्हें उत्साहित कर कुछ भी कराया जा सकता है। बूढ़ा माली इसमें पारंगत था। एक तो वह बच्चों से काम भी लेता था, ऊपर से उन पर एहसान भी जताता था। लेखक उन हरे-भरे बगीचे को याद करते हुए उन्हें 'निस्वार्थ प्रेम का जीता जागता स्वरूप' कहता है। इसलिए कि उसने वहाँ बालोचित उत्साह के चलते श्रमदान किया था, उस बगीचे से उसे कोई लाभ नहीं लेना था, वह तो बालपन के खेल जैसा ही था।

शरारती बच्चों का दिमाग कुछ ज़्यादा ही चलता है। वे अपनी सूझबूझ का भरपूर इस्तेमाल करते हैं। घर के सभी लोग जब अपने कामों में व्यस्त हो जाते हैं, तो मौका पाकर हलधर चारपाई खड़ी करके एक ऊँचे ताख पर से एक रुपया चोरी कर लेता है। (आगे की कहानी इसी **'चोरी'** के इर्द-गिर्द चलती है) डाँट-पिटाई से बचने के लिए नन्हा शातिर दिमाग तरह-तरह के उपाय सोचता है। बिना कुछ खाये-पीये दोनों भाई चुपके से सभ्य बालकों की तरह मदरसे का रास्ता लेते हैं। यह होता है, शरारती बच्चों का दिमाग। वे सब कुछ चौंकन्ने होकर करते हैं, ताकि कहीं से फंसे नहीं। ऐसे बच्चे बहाने रचने में उत्साद होते हैं।

अमरूद खरीदते समय खटकिन के संदेह को आत्मविश्वास के साथ दूर किया जाता है। "मौलवी साहब की फीस देनी है। घर में पैसे न थे, तो चाचा जी ने रुपया दे दिया।"[5] मौलवी साहब के क्रोध को पैसे देकर शांत कर दिया, साथ ही अपनी अनुपस्थिति का कारण, घर में गमी होना बता दिया; ये वही बालक हैं, जो मौलवी साहब की सजा से बचने के लिए उन्हें तरह-तरह के

उपहार लाकर देते और यह सौगात थी, मटर की फलियाँ, ईख, गेहूँ या जौ की हरी-हरी फलें आदि-आदि। रोचक बात है कि जब इन फसलों का मौसम नहीं होता तो कुछ और बहाने किए जाते, हर बार बचने की जुगत भिड़ाई जाती। इसमें दरजी मौलवी साहब की अपने गाँव में बड़ाई करके काम दिलवाना, उनकी पालतू चिड़ियाँ के लिए बेसन पीसना, पतिंगों को पकड़कर लाना जैसे करतब शामिल थे। मौलबी साहब को पटाने के लिए लेखक एवं हलधर की ये योजनाएँ कितनी दिलचस्प हैं और नन्हें शरारती दिमाग को विशेष क्षमता का परिचय देती है।

शरारत बाल्यावस्था की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। किसी बच्चे में यह कम तो किसी में अधिक होती है। माहौल का भी बहुत कुछ असर पड़ता है। शरारत करने में बच्चों को आनंद मिलता है। इसी प्रकार डर या भय भी एक बाल प्रवृत्ति है और शरारती बच्चे भी इससे अछूते नहीं होते तो वे गलत काम जरूर करते हैं, परन्तु उनके अंदर एक डर भी रहता है। इससे बचने के लिए वे तरह-तरह के बहाने रचते हैं। चोरी करने के बाद लेखक एवं हलधर की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। मेले से अकेले लौटते लेखक का डर के मारे बुरा हाल है। पिटाई की आशंका उसके दिलो-दिमाग पर हावी है। प्रेमचंद ने पिटाई के भय से बालक की स्थिति का सटीक चित्र खींचा है--"पैर मन-मन भर हो गये। घर की ओर एक-एक कदम चलना मुश्किल हो गया। देवी-देवताओं के जितने नाम याद थे सभी की मानता मानी--किसी को लड्डू, किसी को पेड़े, किसी को बतासे। गाँव के पास पहुँचा, तो गाँव के डीह का सुमिरन किया, क्योंकि अपने हलके में डीह ही की इच्छा सर्वप्रधान होती है।"[16]

घर के निकट आते ही बालक को कल्पना शक्ति तीव्र हो जाती है वह मार से बचने के लिए बीमारी को भी आमंत्रित करने लगता है। हारकर वह घर के बाहर इमली के पेड़ की ओट में छिप जाता है, ताकि अंधेरा होने पर अंदर चुपके से घुस जाए और अपनी माँ की चारपाई के नीचे जा बैठे।

चोरी में बालकों की दुनिया मौलिकता के साथ चित्रित की गई है। स्कूल में तालाब का मेला की सूचना पाते ही बालमन में खुशी के गुब्बारे फूटने लगते हैं। तत्क्षण योजनाएँ तैयार होने लगता है। गोलगप्पे, रबड़ी, झूले आदि-आदि। लेकिन मेला में कोई दोस्त साथ न हो, फिर क्या मजा ! हलधर के बिना लेखक मेले का थोड़ा भी आनन्द नहीं उठा पाता। कहानी के अंत में प्रेमचंद बाल हृदय का सच्चा स्वरूप लाकर खड़ा कर देते हैं। हलधर को चोरी करने के कारण अकेले मार खानी पड़ती है, जबकि चोरी के पैसे में लेखक भी साझेदार हैं। वह हलधर के विरुद्ध झूठ बोलता है

अत: होना तो यह चाहिए था कि दोनों में बोलचाल बंद हो जानी और हलधर लेखक से बदला भी लेता। लेकिन वह बाल हृदय है।क्षणे रूष्टा, क्षणे तुष्टा, रुष्टा-तुष्टा क्षणे क्षणे ! यहाँ कितना मोहक दृश्य है– "एक क्षण बाद में गुड़-चबेना लिए कोठरी से बाहर निकला। हलधर भी उसी वक्त चिउड़ा खाते हुए बाहर निकले। हम दोनों साथ-साथ बाहर आये और अपनी-अपनी बीती सुनाने लगे। मेरी कथा सुखमय थी, हलधर की दुखमय, पर अंत दोनों का एक था-गुड़ और चबेना।"[7]

बच्चों का संसार है अद्‌भुत एवं निराला।

गुल्ली डण्डा

बचपन की बात हो और खेल का जिक्र न आए, यह भला संभव है! खेल ही में तो बच्चों की आन बसती है। खेल के लिए बाल-समाज, माता-पिता, भाई-बन्धु खाना-पीना, सोना, सब कुछ भूल जाते हैं। वस्तुत: बच्चों में सामाजिकता की भावना का पहला स्फुरण खेलों से ही होता है। बच्चों के समाजीकरण में खेल की महती भूमिका है। बच्चों के खेल के साथियों के बीच ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, गरीब-धनी आदि का बिल्कुल भी अंश नहीं होता। लेकिन वही बड़े होने पर धीरे-धीरे समस्त सामाजिक विकृतियाँ पैदा होने लगती हैं। गुल्ली-डण्डा कहानी कुछ इसी भाव-भूमि पर आधारित है।

प्रेमचंद बचपन में खेले गए गुल्ली-डण्डा को नहीं भूल जाते। इसकी याद आते ही उनका मन मचलने लगता है। वे इस खेल की प्रशंसा करते नहीं थकते। उनके अनुसार, **'गुल्ली डण्डा'** सबसे सस्ता एवं सुगम खेल है। लेखक बचपन की दुनिया में लौट जाता है, जब वह अपने दोस्तों सहित गुल्ली-डण्डा खेल की तैयारियाँ करता या बिना किसी भेदभाव के सारे वर्ग एवं वर्ण के लड़कों के साथ खेलता या "वह प्रात:काल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़कर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डण्डे बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खिलाड़ियों के जमघटे, वह पढ़ना और पढ़ाना, वह लड़ाई-झगड़े, वह सरल स्वभाव, जिसमें छूत-अछूत, अमीर-गरीब का बिल्कुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोचलों की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुंजाइश ही न थी।"[8]

कहानी में 'गया' नाम का लड़का गुल्ली-डण्डा का चैम्पियन है। वह गरीब है, दलित है, अभाव में रहता है, लेकिन उसके अंदर प्रतिभा, एवं साहस की कमी नहीं हैं। वह सभी के छक्के छुड़ा देता है। इसी कारण उसे दूर से आते देखकर सारे बच्चे दौड़कर उसका स्वागत करते हैं और अपना गोइयाँ बना लेते हैं। बच्चों के बीच जो लड़का इस तरह का होता है, उसकी धाक पूरी टीम पर रहती है और वह सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होता है।

प्रेमचंद ने इस कहानी में बच्चों के अंदर खेल-मनोविज्ञान को बारीकी से उधेड़ा है। खेल के दौरान बच्चे प्रतिद्वन्द्वी को हराना चाहते हैं, स्वयं अधिक से अधिक बार जीतना चाहते हैं और इसके लिए वे 'चीटिंग' भी करते हैं, तू-तू-मैं-मैं होती है और अंत में बात "शक्ति प्रदर्शन" तक पहुँच जाती है। बच्चों में खेल के दौरान मनमुटाव, तकरार, गाली-गलौज एवं मारपीट आम बात है।

एक दिन गया और लेखक दोनों के बीच खेल चल रहा था, लेखक को गया पढ़ रहा था। लेखक का चंचल मन इस कष्ट से शीघ्र छुटकारा पाना चाह रहा था। ऐसे पढ़ने में तो उसे भी खूब मजा आता था, परंतु पढ़ना श्रमसाध्य कार्य था। लेखक ने वहाँ से 'फुट' लेने का निश्चय किया। लेकिन गया ने धर दबोचा। अब दोनों तरफ से वाक-प्रवाह आरंभ हो गया। गया लेखक को रोककर पदाने पर अमादा था किन्तु लेखक बचने के लिए एक से एक तर्क देता था। दो बाल-प्रतिद्वंद्वियों के बीच का सुंदर संवाद रचना है। प्रेमचंद ने–

"मेरा दांव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बनके, पदने की बेर क्यों भाग जाते हों?

'तुम दिन भर पदाओं तो मैं दिन भर पदता रहूँ।

हाँ, तुम्हें दिन भर पदना पड़ेगा।

'न खाने जाऊँ न पीने जाऊँ,

'हाँ, मेरा दाँव दिये बिना कहीं नहीं जा सकते।'

'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ?'

'हाँ, मेरे गुलाम हो।'"[9]

खेल में ऐसे मुददे पर खूब बहस सजी होती है। यहाँ भी हो रही है। दोनों में से कोई दबने को तैयार नहीं, लेखक का पक्ष कमजोर है। वह अब एक नया तर्क देता है, जो असंगत है। लेकिन किसी भी तरह उसे जान छुड़ाने से मतलब है। यह संवाद भी बड़ा प्यारा है–

"अच्छा कल मैंने तुम्हें अमरूद खिलाया था। वह लौटा दो।"

'वह तो पेट में चला गया।'

निकालो पेट से। तुमने क्यों खाया मेरा अमरूद?'

'अमरूद तुमने दिया, तब मैंने खाया। तुमसे माँगने न गया था। जब तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दांव न दूँगा।"[10]

इसके बाद वही हुआ जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। लेखक ने गया को गाली दी, गया ने चांटे मारे, लेखक ने दाँत से काटा और गया ने उसकी पीठ पर डंडा दे मारा। लेखक महाराज ने सीधे अंतिम अस्त्र का सहारा लेकर भोंपू बजाना शुरू किया। गया ने अब हथियार डाल दिया और लेखक ने आँसू पोंछ डाले और ऐसे चले, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। यही बच्चों की दुनिया है। उनके बीच कोई स्थायी झगड़ा या दुश्मनी नहीं होती।

लेखक चोटखाकर भी हँसते हुए घर की ओर चला प्रेमचंद ने यहाँ बाल-मनोविज्ञान की प्रामाणिक तस्वीर पेश की है। इसके बाद की पंक्ति बड़ी महत्वपूर्ण है। लेखक की टिप्पणी है। "थानेदार का लड़का एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ, लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।''[11]

गया दलित जाति का है और लेखक थानेदार का लड़का तथा सवर्ण। लेखक (बालक) के अंदर उतनी ही उम्र में यह ज्ञात है कि गया नीची जाति का है और वह ऊँची जाति का श्रेष्ठ।

यह भारतीय समाज का वर्ण व्यवस्था है, जो मासूम बच्चों तक को नहीं छोड़ती और उनमें भी यह भावना डाल देती है। यद्यपि बच्चों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता है, लेकिन बचपन में पड़ी यह भावना बड़े होने पर स्थायी हो जाती है और वह बच्चा जीवन भर इसे ढोता-निभाता रहता है।

कुछ दिनों बाद लेखक के पिता का स्थानान्तरण होने के कारण उसे वह गाँव छोड़ना पड़ा। थानेदार का लड़का सुविधाभोगी तो होगा ही नई जगह जाने की खुशी में उसे पुराने दोस्तों के लिए कोई दु:ख न हुआ। गाँव के उसके साथी अपनी बेचारगी के लिए वहीं पड़े रहे। यही समाज की विडम्बना है। वर्ग भेद से पीछा नहीं छूट सकता। प्रेमचंद ने यहाँ कितनी मार्मिक पंक्ति लिखी है। "उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्द्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे–तुम भाग्यवान हो भाई, जाओ हमें तो इस ऊजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।''[12]

वस्तुत: यही सत्य था और यही उनकी नियति भी।

कहानी में आगे की कथा बड़ों की है। कई साल गुजर गये। लेखक इंजीनियर बन गया लेकिन वह अपने बचपन के दिनों को नहीं भूल पाया। बचपन के गाँव में गया। गुल्ली-डण्डा के पुराने गोइयां गया से मिला। लेखक गया के लिए वहीं नहीं था, जिसने उसे डण्डा मारा था। वह बच्चों की दुनिया थी। यह बड़ों की दुनिया है। वही लेखक गया के लिए अब "हुजूर'' सरकार, और मालिक है। लेखक के अंदर अपने पद का गुरूर है। वह गया के साथ गाँव के सुनसान क्षेत्र में

गुल्ली-डण्डा खेलने जाता है। गया झेंपते हुए तैयार होता है।

लेखक वहाँ खूब चीटिंग करता है और गया को जमकर पदाता है गया आज नतमस्तक है। लेकिन अगले ही दिन पुराने खिलाड़ियों के बीच गुल्ली-डण्डा होता है। उसमें गया एक बार फिर अपने पुराने रूप में है, वही चैम्पियन बन गया। लेखक हतप्रभ है। उसे असलियत समझ में आ गई है। बड़ी महत्वपूर्ण पंक्तियाँ हैं, ये जो बच्चों और बड़ों की दुनिया के बीच का भेद खोलती हैं। लेखक सोचता है–"मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गयी है। अब मैं उसका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।"[13]

प्रेमचंद ने बालकों की दुनिया की मासूमियत, निश्छलता, प्रेम-मनुहार, चुहल, शरारत, लड़ना-झगड़ना आदि के सामने बड़ों की दुनिया को अत्यन्त बौना कर दिया है।

बड़े भाई साहब

अपने समाज में बच्चों की हमेशा नासमझ एवं बचकानी बुद्धिवाला समझा जाता है। बच्चों पर हुक्म चलाना, हर समय उनकी जिन्दगी में दखल देना, नसीहत उपदेश पिलाते रहना ही घर के बड़े बूढ़ों का काम होता है। अपने अहम् एवं बड़प्पन की भावना के सामने वे बच्चों की इच्छा अनिच्छा की कोई परवाह नहीं करते। बड़े हैं तो बस उपदेश का घोल पिलाओ और डाँट-डपट के साथ बच्चों को अपने कब्जे में रखो, यही बड़े होने का मूलमंत्र है।

इस कहानी के बड़े भाई साहब भी इन्हीं बड़ों में से हैं। वे लेखक से पाँच साल बड़े हैं, लेकिन पढ़ने-लिखने में फिसड्डी हैं। हर साल फेल होते थे, जबकि लेखक प्रथम आता था इसके बावजूद बड़े भाई पर इसका कोई असर नहीं होता, छोटे भाई पर अंकुश लगाने एवं उसे डांटने-डपटने के काम में कभी कोताही नहीं करते थे। इस कहानी में बड़े भाई साहब का यही चरित्र-चित्रण है। छोटा भाई द्वितीयक चरित्र है, लेकिन बच्चों की एक स्वाभाविक जिन्दगी होती है, वे अपनी तरह से जीना चाहते हैं। प्रेमचंद ने बच्चों को 'स्वाधीन बनाओ' टिप्पणी में इसी बात की पुरज़ोर वकालत की है। इस कहानी में छोटा भाई भी अपनी बालसुलभ प्रवृत्तियों को दबा नहीं पाता।

"मौका पाते ही होस्टल से निकल मैदान में आ जाता और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज़ की तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या। कभी चारदीवारी

पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनंद उठा रहे हैं।''[14]

बच्चे बंदिशें नहीं मानना चाहते। यह तो बड़ों की जबरदस्ती होती है कि वे उनमें भय पैदा करके अपनी बात मनवाने पर उन्हें मज़बूर करते हैं। लेकिन बच्चों को जहाँ भी मौका मिलता है, वे इस घेरे को तोड़ने से पीछे नहीं हटते। छोटे भाई को जब भी मौका मिलता उड़ लेता। बड़ा भाई बार-बार उसे रोकता, डाँटता, पढ़ाई की दुरूहता बताकर उसे आतंकित करता। एक बार बड़े भाई से आतंकित होकर छोटे भाई ने टाइम-टेबिल बना डाला। लेकिन खेलकूद के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं। अब छोटा भाई कब तक अपने को रोकता? "मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के हल्के-हल्के झोंके, फुटबाल की तरह उछलकूद, कबड्डी के वह दाँव-धात, बालीबाल की वह तेजी और फुरती, मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान लेवा टाइम-टेबिल, आँख फोड़ पुस्तकें, किसी को याद न रहती।''[15]

बच्चों को डरा-धमकाकर, उन पर जबरन अधिकार जताने वाले शिक्षकों से बच्चे दूर भागते हैं और अक्सर ऐसे शिक्षकों की कक्षाओं से वे दूर भागते रहते हैं। छोटा भाई भी बड़े भाई की हिटलर शाही से तंग आ चुका था। "मैं उनके साये से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने की चेष्टा, कमरे में इस तरह दबे पाँव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नज़र मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती।''[16]

बड़े भाई के साथ दो तरह की परेशानियाँ हैं। एक तो वे तत्कालीन दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति के शिकार हैं और जिसकी कीड़ा बनकर दुनिया पर फतह करने में विश्वास रखते हैं। दूसरा उसने 'बड़े' होने का अहम् है। वे श्रेष्ठता ग्रंथि से बुरी तरह ग्रस्त हैं। उनके लिए बड़े होने का मतलब है, छोटे भाई को अपने से कम आंकना और हमेशा उस पर अधिकार जताते हुए उसे नसीहतें देना और डाँटना-धमकाना। प्राय: बड़े अपने इस उद्देश्य में सफल तो हो जाते हैं, परन्तु उन्हें यह नहीं पता होता कि बच्चों पर इसका क्या असर पड़ता है?

भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहतें, ऐसे-ऐसे सूक्ति बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। भाई साहब के 'क्रांतिकारी' और उपयोगी नसीहतों का छोटे भाई पर यह प्रभाव पड़ता है कि वह पलायन करने तक को सोचने लगता है। हर साल कक्षा में अव्वल आने वाला विद्यार्थी केवल बड़े भाई की बकवास उपदेशों के कारण स्वयं को पढ़ाई के योग्य नहीं समझता। आज भी आए दिनों परीक्षा में फेल होने के

कारण बच्चे आत्म हत्याएँ कर लेते हैं।

बड़े भाई के फेल होने के बाद जब छोटे भाई में स्वच्छंदता बढ़ती है, तब भी वह बड़े भाई से बचकर ही रहता है। "मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी की भी भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। झाँसा देना, कन्ने बाँधना, पतंग टूरनामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याऐं सब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। मैं भाई साहब को यह संदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नज़रों में कम हो गया है।''[17]

ध्यान देने योग्य है कि पूरी कहानी में बड़ा भाई, छोटे भाई पर हावी होने की कोशिश करता है। उसे दबाकर रखने की कोशिश करता है, लेकिन छोटा भाई उसी में अपनी बाल सुलभ प्रवृत्तियों (खेलना, कूदना आदि) के लिए अवसर निकाल लेता है और यही कारण है कि वह पढ़ने में भी अव्वल रहता है। यदि वह बड़े भाई के दबाव में आ जाता तो वैसा ही हो जाता जैसे बड़े भाई थे। यहाँ बात उभरकर आ जाती है-वह है, बच्चों को उनकी स्वाभाविक जिन्दगी जीने दी जाए, उन पर अनावश्यक बंदिशें न लगाई जाए और बड़े बार-बार बच्चों को यह न एहसान कराया जाए कि बच्चे नासमझ, अनाड़ी एवं बड़ों के अधीन रहने वाले प्राणी हैं। बड़े भाई के बार-बार फेल होने एवं छोटे भाई के हर बार पास होने पर चीनी लेखिका शान युग का कहना है कि–'प्रेमचंद ने बड़े भाई साहब में शिक्षा व्यवस्था में मौजूद वास्तविक त्रुटियों का वर्णन करते हुए बच्चों की तरफ से उसका विरोध प्रकट किया।''[18]

दूसरी बार भी फेल होने पर बड़े भाई छोटे भाई से केवल एक दर्जा ही ऊँचे रह गए थे। अब छोटे भाई के मन में एक कुटिल भावना पैदा हुई कि यदि भाई साहब एक साल और फेल हो जाए तो फिर दोनों बराबर हो जाएंगे और बड़े भाई का रौब भी खत्म हो जाएगा। दरअसल "अपने त्रासद को संकट में देखकर दबैल की परपीड़न का आनंद अनुभव करने लगता है। परपीड़न का यह भाव भी अनुभव की गहराइयों से निथर कर आया है। लेकिन प्रेमचंद के संवेदनशील पात्र मन से हर बुराई से बचने का प्रयास करते हैं–छोटा भाई भी इस कमीने विचार को दिल से निकाल देता है।''[19] छोटे भाई के अन्दर की समझदारी एवं सद्वृत्ति एकाएक जागृत हो जाती है और वह सोचने लगता है–"आखिर वह मुझे कोई हित के विचार से ही तो डाँटते हैं। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर वह शायद उनके उपदेशों का ही असर है कि मैं दनादन पास हो जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरों से।''[20]

मुक्तिबोध ने प्रेमचंद के पात्रों के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात कही है। मुझे उनकी युक्ति प्रेमचंद के बालपात्रों के संदर्भ में ज्यादा सटीक लगती है। मुक्तिबोध कहते हैं 'प्रेमचंद जी का कथा-साहित्य पढ़कर आज हम एक उदार और उदात्त नैतिकता की तलाश करने लगते हैं, चाहने लगते हैं कि प्रेमचंद जी के पात्रों के मानवीय गुण हममें समा जायें, हम उतने ही मानवीय हो जाये जितना कि प्रेमचंद चाहते हैं।''[21]

'बड़े भाई साहब' में बालकों का एक और पक्ष सामने आया हैं। वैसे यह स्थिति, मैं **'गुल्ली डण्डा'** कहानी में पीछे दिखा चुका हूँ। बच्चों की दुनिया में ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब का कोई भेदभाव नहीं होता। ये सारे प्रपंच बड़ों की दुनिया के हैं। कहानी में छोटे भाई की जब कनकौए उड़ाने का शौक चढ़ा तो पतंग बिरादरी के ढेरों बच्चों से उसकी दोस्ती हो गई। उस टोली में अनपढ़, गरीब एवं फटेहाल लड़के भी थे। छोटे भाई का इस ओर कोई ध्यान नहीं है। लेकिन बड़े भाई इसके लिए छोटे भाई को डाँट लगाते हैं, उसे अपनी पोजीशन का ख्याल कराते हैं और बाजारी लौंडों (उनकी नजर में) के साथ कनकौए उड़ाने के लिए उसे जलील करते हैं।

कहानी के अंत में लेखक ने फ्रायड के अचेतन सिद्धान्त का दृश्य उपस्थित किया है। बड़े भाई के अचेतन में दबी पड़ी बाल सुलभ वृत्ति मौका पाते ही बाहर निकल आती है और उनका बचपन एकाएक अवतरित हो उठता है। वस्तुतः बड़े भाई दिल के बुरे इंसान नहीं हैं। वे हमेशा छोटे भाई का भला चाहते हैं। लेकिन वे गलत शिक्षा-पद्धति एवं संस्कारों के शिकार हैं। इसी कारण बड़े होने का लबादा हर समय ओढ़े रहते हैं। बहरहाल कहानी का अंतिम दृश्य बेहद मनोहारी है–

"संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ रहा था। भाई साहब लम्बे हैं ही। उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।''[22]

सचाई का उपहार

प्रेमचंद की इस कहानी में पहली बार शरारती बच्चों का उग्र रूप देखने को मिलता है। दूसरी कहानियों में शरारत के नाम पर धमा-चौकड़ी, उछल-कूद एवं चुहलबाजियाँ हैं, लेकिन यहाँ तो 'ढ़िशुम-ढ़िशुम' भी होता है। ऐसे प्रसंग स्कूली जीवन के प्रमुख अंग है। बच्चों में प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, गाली-गलौज एवं हाथापाई का लफड़ा चलता रहता है। लेकिन यह सब ख्याली नहीं

होता। जल्दी ही मेल मिलाप हो जाता है और फिर सब कुछ सामान्य। **'सच्चाई का उपहार'** कुछ ऐसी ही कहानी है।

एक मदरसे में मिडिल कक्षा के लड़के मदरसे के प्रथमाध्यापक की बागवानी में मदद करते थे। जमींदार परिवार के चार-पाँच लड़के थे, निकम्मे एवं शरारती। उन्हें इस काम में कोई दिलचस्पी नहीं। वे इसे गुलामी करना मानते थे। दरअसल उनके वातावरण का प्रभाव था। जमींदार परिवार में घर का सारा काम नौकर करते हैं। बच्चों ने अपने माँ-बाप को निकम्मा देखा होगा। स्वयं सुविधा में पले होंगे, सो नवाबी शान तो आएगी ही। प्रेमचंद ने इस समस्या को **'बच्चों को स्वाधीन बनाओ'** टिप्पणी में गंभीरता से उठाया है वे कहते हैं–"सम्पन्न घरों में अपने हाथ से कुछ करना अपमान समझा जाता है। लड़कों के हर एक काम के लिए नौकर लगे हुए हैं। आने-जाने के लिए मोटरें हैं, उन्हें सैर कराने के लिए खूब साफ कपड़े पहना दिए जाते हैं और ताकीद कर दी जाती है कि कपड़े मैले न होने पावें। उनके मनोरंजन के लिए सिनेमा है, चित्रशालाएँ हैं, जहाँ उन्हें केवल आँख से देखने की जरूरत है, खुद कुछ करना नहीं पड़ता। इससे परतंत्रता की जो बुरी आदत पड़ जाती है, वह जिंदगी भर साथ नहीं छोड़ती।"[23]

जमींदार परिवार के ये लड़के कामचोर एवं शरारती तो ये ही, दुस्साहसी भी थे। यह सब घर के सामंती माहौल का प्रभाव था, एक दिन इन सबों ने मिलकर फूलों के बगीचे को बुरी तरह तहस-नहस कर दिया। इस घटना को संयोग से कक्षा के सबसे होनहार विद्यार्थी बाज बहादुर ने देख लिया। वह गरीब परिवार का शांत, गंभीर एवं पढ़ने-लिखने में चतुर लड़का था। विपरीत प्रवृत्ति का होने के कारण उधम गिरोह की इससे नहीं पटती थी। वैसे इस अलगाव के पीछे प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होने का कारण ईर्ष्या भी थी। बाजबहादुर सच्चरित्र एवं पढ़ाकू लड़का था, जबकि ये शरारती तत्व थे। वे दूसरे लड़कों को भड़काते रहते थे, लेकिन उन पर बाजबहादुर का प्रभाव था। मनोवैज्ञानिकों का मानना है "बालक अपने व्यवहार के द्वारा यह दर्शाने का भरपूर प्रयास करता है कि उसका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है। सामान्यतया व्यवहार में यह पाया गया है कि ईर्ष्यालु बच्चे सामाजिक रूप से समायोजित नहीं हो पाते हैं एवं ईर्ष्या की भावना के कारण वह प्रसन्न नहीं रह पाते हैं। जिसके कारण उनमें कुण्ठा व हीन भावना भी पनप सकती है।"[24]

इसी कुण्ठा के कारण उन सबों ने बगीचे को उजाड़ा था। लेकिन अब तो बाजबहादुर ने देख लिया था। सभी उसे पटाने में लगे थे। पहले तो उन सबों ने बाज को तरह-तरह का झाँसा दिया। "हमने जो कुछ किया है। वह सबके लिए किया है, केवल अपनी भलाई के लिए नहीं। चलो यार

तुम्हें बाजार की सैर करा दें, मुँह मीठा करा दें।''[25] बाद में धमकी तक दे डाली।

अगले दिन कक्षा में जब मुंशी जी ने तफ्शीश शुरू किया तो लड़कों की हवाइयाँ उड़ने लगीं। कोई सच बताने को तैयार न था। सबको उधमपार्टी का डर था, व्यर्थ में कौन मुसीबत मोल लेता। कक्षा, स्कूल या छात्रावासों में बदमाश किस्म के लड़कों से प्राय: सामान्य विद्यार्थी भय खाते हैं। वे डर के मारे बदमाशों का काम भी करते हैं। लेकिन यहाँ तो बाजबहादुर जैसा सत्यनिष्ठ एवं ईमानदार बालक, उसने सच उगल दिया और उधमी बच्चों को कड़ी सजा दी गई। यही घटना मारपीट का कारण बनी। शरारती गिरोह ने षडयंत्र रचे। कक्षा के लड़कों ने भी साथ दिया। लेखक इसका कारण बताता है, "यंत्रणा में सहानुभूति पैदा करने की शक्ति होती है।''[26]

दूसरी वजह थी, उधमी बालकों का आतंक। यहाँ स्कूली बच्चों की मारपीट का सजीव एवं यथार्थ चित्रण है। अक्सर यह काम छुट्टी के बाद रास्ते में होता है। यहाँ अमरूद के बाग के पास पहले ही गैंग के सारे लड़के तैनात हैं। बाजबहादुर का रास्ता रोका जाता है। मारपीट के दौरान जब घूँसा खाकर बाजबहादुर गिर पड़ा तो यह देखकर विरोधी पक्ष में सनसनी फैल गई। वे तत्काल रणभूमि छोड़कर भाग चले। डर के मारे उनका बुरा हाल था। रास्ते में ही दल बिखर गये। जराम, जगत और शिवराम एक साथ पहुँचे। सब की हालत खराब थी, तरह-तरह की आशंकाएँ मन में पनपने लगीं। यह सब सोचकर उन्हें पसीना आ रहा था।

खैर, इसके बाद कहानी में एक अनोखा परिवर्तन होता है। बाजबहादुर इस मारपीट की न ही मुंशीजी से शिकायत करता है और न उन लड़कों से बदला लेता है। घटना के दूसरे दिन तीनों दोषी लड़के मदरसा नहीं आते, जबकि उस गैंग का चौथा सदस्य वली मुहम्मद उपस्थित है। लेकिन डर के मारे उसकी हालत खराब है ही, चश्मदीद गवाह (लड़कों) का भी बुरा हाल है।

यही होता है स्कूल का झगड़ा! तीनों लड़के कई दिनों तक मदरसे में अनुपस्थित रहते हैं और जहाँ-तहाँ मटरगस्ती करते रहते हैं। एक दिन जब बाजबहादुर से भेंट होती है तो उन्हें तत्काल यह विश्वास ही नहीं होता कि बाजबहादुर ने उन्हें माफ कर दिया है। बाद में जब वे मदरसा आते हैं तो सबकुछ पूर्ववत रहता है। यह घटना उनका हृदय परिवर्तन कर देती हैं और वे बाजबहादुर से माफी माँग कर उसके दोस्त बन जाते हैं।

ध्यान देने योग्य है कि माफी मांगने वाले लड़के किन जमींदारों के घर के हैं। पहले उन पर अपने घर परिवार का प्रभाव था, लेकिन बाद में बाजबहादुर के चरित्र ने उन्हें प्रभावित किया और वे सुधर गये। जाने माने लेखक योगेन्द्र द्विवेदी अपने आलेख "बच्चों से भी कमजोर बाल साहित्य'

में अंग्रेज़ विद्वान ग्लेन कनिंधन को उद्घृत करते हैं। कनिंधम साहब का कहना है कि "कोई बच्चा मूलत: बुरा नहीं होता। बुरा होता है वातावरण और बड़ों का उदाहरण! "यह चीज़ें बदल दीजिये, बच्चें के भीतर की अच्छाई चमक उठेगी।''[27] यह उक्ति इस कहानी के लिए बिल्कुल सटीक बैठती है।

प्रेमचंद की इस कहानी पर आदर्शवाद का प्रभाव है, जहाँ वे हृदय परिवर्तन को समाधान के रूप में प्रस्तुत करते हैं। बाजबहादुर को लेखक ने आदर्श चरित्र के रूप में पेश किया है। चूँकि यह बालमनोविज्ञान की कहानी है। अत: बाजबहादुर का चित्रण कहीं-कहीं अस्वाभाविक भी लगता है। झगड़े के अगले दिन बाज बिल्कुल सामान्य था, जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह विरोधी गुट के साथ ज़्यादा सहज एवं प्रसन्नचित्त होकर मिल रहा था। लेखक तो यह भी लिखता है कि जब बजा बहादुर ने इसके लिए पूरी रात चिंतन-मनन किया। इतना ही नहीं, बाज की मुलाकात जब शेष तीनों लड़कों से होती है, वहाँ ऐसा लगता है, जैसे बाज की ओर से स्वयं प्रेमचंद बोल रहे हों। यह संवाद द्रष्टव्य है–

"जयराम – तुमने उन लोगों को छोड़ दिया होगा, लेकिन हमें भला तुम क्यों छोड़ने लगे। तुमने एक-एक की तीन-तीन जड़ी होगी।

बाज – आज मदर से चलकर इसकी परीक्षा ही कर लो।

जगत – यह झाँसे रहने दीजिए। हमें पिटवाने की चाल है।

बाज – तो मैं कहीं भागा तो नहीं जाता? उस दिन सच्चाई की सजा दी थी, आज झूठ का इनाम दे देना।

जयराम – सच कहते हो तुमने शिकायत नहीं की।

बाज – शिकायत की कौन बात थी। तुमने मुझे मारा, मैंने तुम्हें मारा अगर तुम्हारा घूँसा न पड़ता तो मैं तुम लोगों को रणक्षेत्र से भगा कर दम लेता। आप के झगड़ों की शिकायत करने की मेरी आदत नहीं है।''[28]

प्रेमचंद के साथ एक दिक्कत यह भी है कि जहाँ उनके पात्र कुछ खास काम कर दिखाते हैं, लोग उन्हें 'देवता', 'अवतार पुरुष' आदि कहकर उसकी पूजा करने लगते हैं। पीछे की कहानियों में विशेषकर जानवरों की कहानियों में यह हाल हम देख चुके हैं। यहाँ एक स्कूली बच्चे तक को नहीं छोड़ा गया है। आश्चर्य तो यह भी है कि बाज के हमउम्र बालक ही उसके बारे में यह सब कहते

हैं। प्रेमचन्द को जहाँ गुंजाइश लगती है, बच्चों के अंदर घुसकर अपनी बात कह डालते हैं। वली मुहम्मद कहता है–

"मुझे तो ऐसा मालूम होता है वह आदमी नहीं देवता है। यह आँखों देखी बात न होती तो मुझे कभी इस पर विश्वास न आता।"[29]

अंत में मारपीट करने वाले लड़के बाज से माफी माँगते हैं। प्रेमचंद को अभी भी संतोष नहीं है। वे जगतसिंह के मुख से फिर कहलवाते हैं, "तुम सजनता की मूर्ति हो, हम लोग उजड्ड, गँवार और मूर्ख हैं, हमें अब क्षमा प्रदान करो।"[30] इस तरह बाज बहादुर को सचाई का उपहार मिलता है।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5 पृ० सं० 82
2. वही, पृ० सं० 82
3. वही, पृ० सं० 82
4. प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग-3, पृ० सं० 187
5. प्रेमचंद, मानवरोवर, भाग-5, पृ० सं० 84
6. वही, पृ० सं० 85
7. वही, पृ० सं० 87
8. प्रेमचंद मानसरोवर, भाग-1, पृ० सं० 127
9. वही, पृ० सं० 128
10. वही, पृ० सं० 128
11. वही, पृ० सं० 129
12. वही, पृ० सं० 129
13. वही, पृ० सं० 133
14. वही, पृ० सं० 67
15. वही, पृ० सं० 68

16. वही, पृ० सं० 68

17. वही, पृ० सं० 71-72

18. सं०-शान युन-चीनी समालोचकों की नजर में प्रेमचंद, पृ० सं० 90

19. सं०-रामदरश मिश्र और ज्ञानचन्द गुप्त-कथाकार प्रेमचंद, पृ० सं० 213

20. प्रेमचंद, मानवरोवर, भाग-1 पृ० सं० 71

21. मुक्तिबोध, 'मेरी माँ ने मुझे प्रेमचंद का भक्त बनाया' (आलेख पुस्तिका) पृ० सं० 4

22. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-1, पृ० सं० 73

23. प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग-3, पृ० सं० 187

24. शशी चित्तौड़ा एवं हरिश्चन्द्र नरसावत - 'शिशु एवं बाल मनोविज्ञान', पृ० सं० 96

25. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-8 पृ० सं० 61-62

26. वही, पृ० सं० 63

27. उत्तर प्रदेश (मासिक), नवम्बर - 1998 पृ० सं० 9

28. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-8, पृ० सं० 65-66

29. वही, पृ० सं० 66

30. वही, पृ० सं० 66

दूध का दाम

प्रेमचन्द एक प्रगतिशील रचनाकार थे। अपने साहित्य में उन्होंने वर्ग-भेद की समस्या को तो उठाया ही, जाति-भेद से जुड़े प्रश्नों को भी प्रमुखता से उजागर किया। वर्ण-व्यवस्था पर आधारित भारतीय हिन्दू समाज में बच्चे भी इस विकृति से अछूत नहीं रह पाते। होश संभालते ही उन्हें अपनी जाति विशेष का ज्ञान हो जाता है और इसके साथ-साथ उनकी सामाजिक हैसियत का भी पता चल जाता है। **'दूध का दाम'** में कुछ ऐसे ही प्रश्नों को प्रभावी तरीके से उठाया गया है। कहानी में दो तरह के बच्चे चित्रित किए गए हैं। एक ओर मंगल है, जो अनाथ, गरीब, दलित जाति (हिन्दू समाज के अनुसार 'छोटी जाति') का है।

दुबला-पतला एवं रोगी होने के बावजूद वह दौड़ने लगता है, तभी माँ मर आती है। वह बाबू साहब के यहाँ जूठन एवं उतारन पर जिन्दगी गुजारने लगता है। बालपन में ही यह समाज उसे एहसास करा देता है कि वह निम्न श्रेणी का प्राणी है–"उसे तब बुरा जरूर लगता था, जब उसे मिट्टी के कसोरों में ऊपर से खाना दिया जाता था। सब लोग अच्छे-अच्छे बरतनों में खाते हैं, उसके लिए मिट्टी के कसोरे !

यों उसे इस भेदभाव का बिलकुल ज्ञान न होता था, लेकिन गाँव के लड़के चिढ़ा-चिढ़ाकर उसका अपमान करते रहते थे। कोई उसे अपने साथ खेलाता भी न था। यहाँ तक कि जिस टाट पर वह सोता था, वह भी अछूत था।"[1] कहानी का दूसरा बालपात्र सुरेश है, जो महेशनाथ का लाडला बेटा है। वह घी-मलाई खाता है और माँ की गोद में कहानियाँ सुनता हुआ सोता है। यद्यपि वह मंगल की भंगी माँ का दूध पीकर ही पला-बढ़ा है, लेकिन स्वयं बालक होने के बावजूद वह भी मंगल के साथ उसी तरह का व्यवहार करता है, जैसे बड़े करते है। लेकिन इसमें उस बच्चे का दोष नहीं है, उसके घर-परिवार एवं इस ढोंगी समाज का दोष है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि–"कुछ अभिभावक अपने बच्चों को पूर्वाग्रहों का शिक्षण देते हैं, जैसे–किसी वर्ग विशेष के लड़कों के साथ न खेलने देना अथवा वे स्वयं किसी प्रजाति अथवा धर्म विशेष के व्यक्ति के पूर्वाग्रहों से ग्रसित व्यवहार करते हैं एवं बालक उसका अनुकरण करता है। कोई बालक कितनी मात्रा में पूर्वाग्रहों से ग्रसित होगा यह उसके घर के वातावरण पड़ोसी, उसका समुदाय एवं उसके साथियों पर निर्भर करेगा।"[2] गाँव के जो लड़के मंगल को चिढ़ाकर उसका अपमान करते हैं, उकसे पीछे भी यही कारण है।

सुरेश दिन-रात मंगल के प्रति अपने माँ-बाप एवं नौकरों का व्यवहार देखता रहता है, इसलिए पूर्वाग्रह का असर उस पर काफी ज्यादा है। 'सुरेश एण्ड कम्पनी' कभी मंगल को अपने

साथ खेलने नहीं देती। उन्हें पता है, मंगल को छू देने से वे अपवित्र हो जाएंगे। लेकिन एक दिन खिलाड़ियों की कमी की वजह से वे मंगल को आमंत्रित करते हैं। मंगल को मालिक का डर हैं, वह तैयार नहीं होता। कोमल बाल हृदय अपने मालिक से इतना डरा हुआ है। ऊपर से खेल भी कैसा है–मंगल घोड़ा बनेगा और सुरेश उस पर सवारी करेगा। यहाँ भी वही एहसास ! प्रेमचंद मंगल के मुख से एक पीड़ादायी प्रश्न खड़ा करते हैं–"मैं बराबर घोड़ा ही रहूँगा कि सवारी भी करूँगा?"[3] घोर उपेक्षित होने के बावजूद एक तरफ मंगल का बालपन भी घोड़े पर सवारी करने को चाहता है, क्योंकि यह खेल का एक हिस्सा है; लेकिन अंदर ही अंदर उसे इसका क्रोध है कि हमेशा तो वह घोड़ा ही बनता है। मंगल इस समय पूरे दलित समाज के बच्चों की ओर से प्रश्न करता दीखता है। लड़के उसे यह कहकर बैठाने को तैयार नहीं होते कि वह भंगी है। लेकिन उस पर बैठना जरूर चाहते हैं। मंगल के इंकार करने पर सुरेश उसे धमकाता है। अंतत: सुरेश जबरदस्ती उसकी पीठ पर बैठ गया, लेकिन मंगल नीचे से घिसककर भाग गया और सुरेश टेसुए बहाने लगा।

यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। माँ के पूछने पर सुरेश रोते हुए यह नहीं बताता है कि 'मंगल ने मारा है', वह यह बताता है कि 'मंगल ने छू दिया'। उसे ज्ञान है कि इस अपराध के लिए मंगल को बड़ी सजा मिलेगी। जाति-व्यवस्था की क्रूर लीला का स्वाभाविक चित्रण है यहाँ। प्रेमचंद ने अपने समय एवं समाज की सच्ची तस्वीर रच डाली है। मंगल को कड़ी सजा मिलती है और उसे वहाँ से निकाल दिया जाता है। प्रेमचन्द की इन पंक्तियों में कितनी मार्मिकता है–"मंगल में गैरत तो क्या थी, हाँ डर था। चुपके से अपने सकोरे उठाये, टाट का टूकड़ा बगल में दबाया, धोती कन्धे पर रखी और रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा। अब वह यहाँ कभी न आएगा।"[4] मंगल को पता था, उसे गाँव में कोई शरण नहीं देगा, क्योंकि वह अछूत है और उसे अपने यहाँ रखने से लोग अपवित्र हो जाएंगे। एक बालक की विवशता, बेचारगी एवं पीड़ा की कितनी भयावह तस्वीर है।

मंगल अपने टूट चुके पुराने घर की ओर चला। पहले भी वह शाम को रोज वहाँ जाता और रोकर वापस लौट आता। परिस्थितियों का शिकार बालक अपने दिवंगत माँ-बाप को याद करके दिल को तसल्ली दे देता था। दूसरी ओर एक बड़ी जगह थी, जहाँ इसे अपनापन-सा लगता था। इस कारण भी वह रोज शाम को वहाँ जाकर आँसू बहाता था। कहानी में एक पशु चरित्र भी है–टामी। आलोचकों की राय में प्रेमचन्द की कहानियों के दूसरे जानवर-पात्रों की अपेक्षा टामी का चित्रण अधिक स्वाभाविक ढंग से हुआ है। टामी यहाँ मनुष्यों जैसा बोलता तो नहीं हैं, लेकिन टामी की ओर से लेखक की बात में स्वाभाविकता नजर आती है।

पीछे कहानियों में हम यह देख चुके हैं कि बच्चों का पशुओं से कितना आत्मीय संबंध बनता है। पशु भी बच्चों से उतने ही घुले-मिले नज़र आते हैं। **'दूध का दाम'** का टामी सब ओर से उपेक्षित मंगल का एकमात्र संगी-साथी है–"बस, उसका कोई अपना था, तो गाँव का एक कुत्ता जो अपने सहवर्गियों के जुल्म से दु:खी होकर मंगल की शरण आ पड़ा था। दोनों एक ही खाना खाते, एक ही टाट पर सोते, तबियत भी दोनों की एक-सी थी और दोनों एक-दूसरे के स्वभाव को जान गए थे। कभी आपस में झगड़ा न होता।"[5] वस्तुत: टामी का चरित्र-चित्रण करके प्रेमचन्द पूरे समाज की निर्दयता पाखण्ड एवं क्षुद्रता की कलई खोल देते हैं।

'दूध का दाम' में पेट की आग का नग्न चित्रण है। पेट की ज्वाला जानवर-मनुष्य का भेद मिटा देती है। पेट के सामने मान-अपमान कुछ भी नज़र नहीं आता। यहाँ मंगल जैसा बालक है– वह भला भूख कब तक सह सकता है? भूख की विवशता मंगल को उसी जूठन की ओर खींच ले जाती है और वह टामी को साथ लेकर चल देता है। भूखा बालक रास्ते में सोचते चलता है–"बाबू जी और सुरेश दोनों की थालियों में घी खूब रहता है और वह मीठी-मीठी चीज–हाँ मलाई।"[6] डर के मारे मंगल अंधेरे में छुपा रहता है, लेकिन नौकरों को जूठन फेंकते देख सारा डर एवं लज्जा हवा हो जाती है। जूठन लेते हुए भी वह **'प्रौढ़'** बालक कृतज्ञता भरी आँखों से नौकरों की ओर देखता है। समाज की क्रूरता का कैसा वीभत्स रूप है? वही पेट की आग में जलते बालक का मौलिक रूप भी। कहानी के अंत में प्रेमचंद मंगल के अन्दर प्रविष्ट कर जाते हैं और उसके मुख से कहानी का बीज-वाक्य कहलवाते हैं–"पेट की आग ऐसी होती है। यह लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलतीं, तो क्या करते?

".....लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।"[7]

प्रेमचन्द ने पहली बार इस कहानी में जाति-व्यवस्था में पीसते बाल-चरित्र को रूपायित किया है। यहाँ केवल यह नहीं कहा जा सकता है कि मंगल को अनाथ एवं गरीब होने के कारण यह जलालत झेलनी पड़ी; क्योंकि यदि मंगल किसी गैर-दलित जाति का होता तो समाज का कोई भी व्यक्ति उसे अपने यहाँ नौकर के तौर पर तो रख ही लेता और उसे अस्पृश्यता का गहरा दंश नहीं झेलना पड़ता। प्रेमचंद की सफलता कही जाएगी कि उन्होंने बालकों की दुनिया में इस सवाल को ढूँढ़ा है और इतने प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। लोग बचपन को मात्र गुड्डे-गुड़िया एवं चुन्नू-मुन्नू की दुनिया मानते हैं। समाज के निचले तबके के बच्च अपने ही उम्र के बच्चों द्वारा

भी इस तरह का अपमान एवं उपेक्षा झेलते हैं, इस पर कोई सोच-विचार तक करना नहीं चाहता, लिखने की बात तो दूर है। इसे प्रेमचन्द जैसा प्रगतिशील एवं जागरूक रचनाकार ही अपने शब्द दे सकता है। अकारण नहीं कि वे कालजयी रचनाकार हैं।

तेंतर–

तीन पुत्रों के बाद पैदा हुई लड़की 'तेंतर' कहलाती है। हमारे समाज में ऐसी लड़की को परिवार के लिए घोर अपशकुन माना जाता है। यह समाज की जड़ता, पाखंड एवं संकीर्णता है। प्रेमचन्द ने इस कहानी में इस सामाजिक विकृति पर कड़ा प्रहार किया है।

इस कहानी में 'तेंतर' अभी शिशु है, अत: उसके चित्रण के नाम पर अधिक से अधिक उसकी बालछवि एवं आंगिक संचालनों का वर्णन प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रेमचंद ने यह काम कुशलता से किया है। इसके साथ-साथ उन्होंने 'तेंतर' के बड़े भाइयों (जो स्वयं अभी बच्चे हैं) का भी जीवंत संसार रचा है। पहले तेंतर की शिशु छवि का निरीक्षण किया जाय।

तेंतर के जन्म पर बच्चों को छोड़कर सभी दु:खी हैं। विशेषकर दामोदरदत्त (तेंतर के पिता) की माँ। वह दिन-रात उस नन्हें शिशु को कोसती रहती है। यहाँ भी वह कोसते हुए ही तेंतर की छवि गढ़ रही है, लेकिन इसी बहाने लेखक शिशु की जीती-जागती प्रतिमा हमारे सामने उपस्थित कर देता है–"लड़की दुबली-पतली भी नहीं है। तीनों लड़कों से हष्ट-पुष्ट है। बड़ी बड़ी आँखें हैं, पतले-पतले लाल-लाल ओंठ हैं, जैसे गुलाब की पत्ती। गोरा-चिट्टा रंग है, लम्बी-सी नाक। कलमुंही नहलाते समय रोयी भी नहीं, टुकुर-टुकुर ताकती रही।"[8] एक बार दामोदरदत्त रात में पानी पीने उठे तो देखा, बालिका जाग रही थी। लेखक ने पुन: शिशु छवि का हृदयग्राही अंकन किया है–"सामने ताख पर मीठे तेल का दीपक जल रहा था, लड़की टकटकी बांधे उसी दीपक की ओर देखती थी, और अपना अंगूठा चूसने में मग्न थी। चुभ-चुभ की आवाज आ रही थी। उसका मुख मुरझाया हुआ था, पर वह न रोती थी न हाथ-पैर फेंकती थी, बस अंगूठा पीने में ऐसी मग्न थी मानों उसमें सुधा-रस भरा हुआ है।"[9] सौन्दर्य-वर्णन में प्रेमचन्द का कोई शानी नहीं। उनका यह कमाल, यहाँ शिशु के सजीव चित्रण में देखने को मिलता है।

बच्चों की निर्मल छवि को देखते ही हम सारा तनाव, सारा गुस्सा, दुर्भावनाएँ भूल जाते हैं। दामोदर दत्त रात में जब तेंतर का सलोना मुखड़ा निहारते हैं, तो भाव-विह्वल हो जाते हैं। वे अपने-आप को रोक नहीं पाते और बच्ची को उठाकर प्यार करने लगते हैं। बच्ची भी इसका प्रतिउत्तर देती है। मनोविज्ञान के अनुसार इसका कारण शिशु में निहित संवेग है। वस्तुत: "संवेग

एक दुमुखी प्रक्रिया है। इसके द्वारा बालक एक ओर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है वहीं दूसरी ओर दूसरों की भावना को समझने में इन्हें आसानी रहती है।''[10] दामोदरदत्त ने जब बच्ची को गोद में उठाकर उसका मुख चूमा तो "लड़की को कदाचित पहली बार सच्चे स्नेह का ज्ञान हुआ। वह हाथ-पैर उछालकर **'गूं-गूं'** करने लगी और दीपक की और हाथ फैलाने लगी। उसे जीवन-ज्योति-सी मिल गयी।''[11]

शिशुओं की सबसे बड़ी आवश्यकता क्षुधा-तृप्ति होती है। यदि उनका पेट भरा हो तो, वे मस्त होकर खेलते हैं। शिशु के रोने-चिल्लाने पर जैसे ही उनकी माताएँ स्तन को उनके मुख से लगाती हैं, वे चुप हो जाते हैं। दामोदर दत्त ने जब बकरी के थन से बच्ची का मुँह लगाया, तो वह चुबलाने लगी। फिर दूध की धार जाते ही उसे जैसे संजीवनी मिल गई। प्रेमचंद इसकी मनोरम झांकी प्रस्तुत करते हैं–"लड़की का मुँह खिल उठा। आज शायद पहली बार उसकी क्षुधा तृप्त हुई थी। वह पिता की गोद में हुमक-हुमककर खेलने लगी।''[12] अब थोड़ा तेंतर के भाइयों का हाल। वे सब भी बच्चे हैं। बच्चों को पहले से पता था (वे जानकारी रखते हैं) कि माँ को बच्चा पैदा होने वाला है। वे सब उत्सुक एवं उत्साहित हैं। "सबेरा होते ही बड़ा लड़का सोकर उठा और आँखें मलता हुआ जा कर दादी से पूछने लगा–बड़ी अम्मां, कल अम्मां को क्या हुआ?

माता–लड़की तो हुई है।''[13] बालक का मुखड़ा खिल उठता है। उसे इससे कोई मतलब नहीं कि लड़की के होने से घरवालों पर क्या बीत रही है। वह बालक तक निश्छलता से भर उठता है–"ओ-हो-हो, पैजनियाँ पहन-पहनकर छुनछुन चलेगा''[14] बच्चे बड़ी जल्दी कल्पना में पहुँच जाते हैं। इस पूरे प्रसंग में बाल-मनोविज्ञान का उत्कृष्ट चित्रण है। बच्चों की जिज्ञासा, कोमलता, मासूमियत, अबोधता एवं उत्सुकता का सुन्दर समन्वय किया गया है।

बहन के जन्म की खबर पाकर बच्चें में धैर्य कहाँ। पहले तो वह देखने के लिए पागल हो उठता है। बच्चे की जिज्ञासा एवं उत्सुकता का मेल देखने लायक है। बच्चा सौर के द्वार पर जाकर बोलता है–

> "अम्मां, जरा बच्ची को मुझे दिखा दो।
>
> भाई ने कहा - बच्ची अभी सोती है।
>
> बालक–जरा दिखा दो, गोद में लेकर।''[15]

यहाँ ऐसा लग रहा है, जैसे यदि थोड़ी-सी देर होती तो बच्चा अपने कौतूहल को जब्त नहीं कर पाता और सौरगृह में घुस जाता। इस दृश्य को देखकर **'नादान दोस्त'** की याद आ रही है,

जहाँ श्यामा भी अंडे देखने के लिए अति उत्सुक है।

बच्चे नई चीज़ देखकर तत्क़ाल उसे दूसरों को बताना चाहते हैं। बालक ने सब्र को तत्क्षण फेंक-फांककर आगे की राह ली। उत्सुकता इतनी तीव्र है कि सोए हुए भइयों को जगा-जगाकर यह खुशखबरी देने लगा। शेष बालक इससे तनिक भी कम नहीं। उनमें से तो कोई आँख भी नहीं मलता। तत्काल कौतुहल और कल्पना का सुन्दर खेल शुरू हो जाता है। प्रेमचंद यहाँ बाल-मनोविज्ञान की गहराई तक उतर गए हैं। बच्चों के संवाद कितने मौलिक एवं हृदयग्राही हैं–

"एक बोला – नन्हीं-सी होगी।

बड़ा – बिल्कुल नन्हीं-सी। बस जैसी बड़ी गुड़िया। ऐसी गोरी है कि क्या किसी साहब की लड़की होगी। यह लड़की मैं लूँगा।

सबसे छोटा बोला – अमको बी दिका दो।''[16]

बच्चों की दुनिया न्यारी होती है। उन्हें परिवार में चल रहे शोक लहर से कोई मतलब नहीं है। वे नन्हें शिशु को लेकर उमंग से भर उठे हैं। बच्ची को बाहर ले जाकर खेलाने के लिए लालायित हैं। अम्मां से उसे बार-बार झिड़की मिलती है। फिर भी उसका बाल-सुलभ मन धीरज नहीं रख पाता। दामोदर दत्त जब सिद्धू को बकरी पकड़ लाने के लिए कहते हैं, तो छोटा भाई भी पीछे-पीछे जाता है। बकरी का दूध पीकर जब बच्ची खुश होकर खेली है तो सब मिलकर उसे खुब खिलाते-कुदाते हैं। यही बच्चों की दुनिया है। प्रेमचंद को बच्चों के इस मनोविज्ञान की सूक्ष्मता का ज्ञान है। वे स्वयं कहते हैं–"बालकों को बच्चों से बहुत प्रेम होता है। अगर किसी घोंसले में चिड़िया का बच्चा देख पायें तो बार-बार वहाँ जायेंगे। देखेंगे कि माता बच्चे को कैसे दाना चुगाती है। बच्चा कैसे चोंच खोलता है, कैसे दाना लेते समय परों का फड़फड़ाकर चें-चें करता है। आपस में बड़े गंभीर भाव से उसकी चरचा करेंगे, अपने अन्य साथियों को ले जाकर उसे दिखायेंगे।''[19] **'नादान दोस्त'** इसी मनोविज्ञान पर आधारित है। इससे यह स्पष्ट पता चलता है कि प्रेमचन्द को बाल-मनोविज्ञान की पूरी समझ थी।

'गृहदाह' कहानी में सत्यप्रकाश नये शिशु को देखने के लिए लालायित है। बच्चे की खबर सुनते ही वह खुश होकर खूब उछलता-कूदता है और सौरगृह तक जा पहुँचता है। सौतेली माता की झिड़की पाकर उसे निराशा होती है, लेकिन बच्चों को लेकर उसके मन में उत्सुकता एवं कौतुहल जारी है। एक दिन मौका पाकर वह चुपके से घर में घुस जाता है और ओढ़ना हटाकर बच्चे को भाव-विह्वल होकर देखता है, कपोल चूमता है।

'तेंतर' में बच्चों के इस मनोविज्ञान का कुशल वर्णन है। बच्चे तेंतर से काफी घुले-मिले हैं। ऐसा लगता है, जैसे उन सबके प्राण उसमें बसते हैं। बकरी को पकड़कर दूध पिलाने की जरूरत दामोदर दत्त को एक ही बार पड़ी। उसके बाद से तो बच्चों का यह सबसे और जरूरी काम हो गया–"सिद्धू ताक में रहता, ज्यों ही माता भोजन बनाने या स्नान करने जाती तुरंत बच्ची को लेकर आता और बकरी को पकड़कर उसके मन में शिशु का मुँह लगा देता, कभी दिन में दो-दो-तीन-तीन बार पिलाता।"[18] बच्चों को अपनी बहन के भूख की इतनी अधिक चिन्ता है कि वे इस काम में कभी नागा नहीं करते, कभी-कभी तो दिन में दो-तीन बार पिला देते। बच्चों के अंदर की समझदारी एवं कार्यकुशलता का ही परिणाम है कि बकरी को रोज बुलाने के लिए वे उसे खूब भूसी-चोकर खिलाते हैं। इस लालच में वह रोज चली आती है। यह नन्हें दिमाग की सूझ है। प्रेमचंद बार-बार बड़ों की दुनिया की अपेक्षा बच्चों के संसार की महत्ता स्थापित करते हैं। इस कहानी में उन्होंने न सिर्फ वयस्कों, बल्कि पूरे समाज की जड़ता, अंधविश्वास, स्वार्थ एवं लड़कियों के प्रति उपेक्षाभाव आदि का पर्दाफाश किया है। पूरी कहानी में यदि कहीं मानवीयता एवं उदात्तता नजर आती है तो वह बच्चों में है। कहना न होगा, 'तेंतर' में बालमनोविज्ञान का उत्कृष्ट चित्रण भी है और सोद्देश्य भी।

बंद दरवाजा

'**बंद दरवाजा**' प्रेमचंद की एकमात्र ऐसी कहानी है, जो शिशुमनोविज्ञान पर आधारित है। '**बीमार बहन**' की ही तरह इस कहानी का कलेवर भी काफी छोटा है। लेकिन लघु आकार में ही यह कहानी गहरा अर्थ समेटे हुए है। शिशुकाल में बच्चे सबसे अधिक माँ पर अवंलंबित होते हैं। शिशु की सारी दुनियां माँ की गोद में होती है। यही कारण है कि इस अवस्था में जब शिशु रोना शुरू करता है तो सीधे माँ के पास जाने पर ही चुप होता है। खिलौने, मिठाई आदि ज्यादा देर तक उसे टिका नहीं सकते।

'**बंद दरवाजा**' के आरंभ में शिशु-छवि का मोहक चित्र उपस्थित हुआ है। जैसे लगता है, पर्दा उंठाते ही नाटक का पहला दृश्य द्वारा हो गया। प्रेमचंद लिखते हैं–"सूरज क्षितिज की गोद से निकला, बच्चा पालने से–वही स्निग्धता, वही लाली, वही खुमार, वही रोशनी।"[19]

इसके बाद कहानी की ही पंक्ति शिशु मनोविज्ञान की एक-एक परत खोलती जाती है और हम उसका कोमल स्वरूप देखते जाते हैं।

बच्चा दरवोजे से झांकता है, लेखक की मुस्कराहट से उसे 'सिग्नल' मिल गया है, वह लेखक की गोद में आ जाता है। बच्चे संवेग के कारण सामने वाले का भाव पढ़ लेते हैं, मुस्कुराने पर वे भी मुस्कुराते है और गोद में आ जाते हैं। तभी एक चिड़िया वहाँ आती है। बच्चा कौतूहलपूर्वक उसे निहारता है। बच्चे हर नई चीज को जिज्ञासा एवं उत्सुकता की नजर से देखते है। लेकिन केवल देख लेने मात्र से ही उनका मन नहीं मानता। इस संदर्भ में बाल मनोवैज्ञानिकों का कहना है–"पहले बच्चा जिज्ञासावश डरता हुआ किसी वस्तु के बारे में जानने की कोशिश करता है, परन्तु बाद में जाकर उसमें दृढ़ता आ जाती है। नई वस्तुओं को देखने पर जिज्ञासावश बालक उनकी बनावट समझना चाहता है। परिणामस्वरूप वह पूरी वस्तु को तोड़-फोड़ कर देखना चाहता है।"[20] चिड़िया को देखकर बच्चा उसकी ओर बढ़ा। लेकिन उसके छूते ही चिड़िया उड़ गई। बच्चे को असफलता हाथ लगी, वह रोने लगा। शिशुओं का यही हाल होता है, मनोनुकूल काम होने पर वे हँसते-खिलखिलाते हैं और असफलता-निराशा होने पर सीधे रोने लगते हैं। अपनी असफलता व्यक्त करने का उनके पास यही तरीका होता है। शिशु क्रोधित होने पर भी रोकर अपना भाव प्रकट करते हैं। संवेग के कारण शिशु छोटी-छोटी चीजों को (विशेषकर जिससे उनका सीधा संबंध होता है) समझते हैं। जैसे किसी के मुसकुराकर हाथ बढ़ाने पर वे खुश होकर उसकी गोद में आ जाते हैं। बड़ों द्वारा डांटने या आंख दिखाने पर उन्हें अच्छा नहीं लगता। उनके अंदर भी रोष उत्पन्न होता है और तत्काल उन्हें यदि नहीं समझाया-बुझाया गया तो वे रोने लगते हैं। समझाने-बुझाने के अन्तर्गत कोई खिलौना देना, कंधे पर या गोद में लेकर घुमाना अथवा प्यार प्रदर्शित करना मुख्य है।

गरम हलवे की पुकार सुनकर बच्चे के चेहरे पर लाली दौड़ जाती है। उसे पता है कि खोंमचे वाले के पास खाने की मीठी वस्तु होती है। अब भला बच्चा इस पर अपने को कैसे रोक सकता है? वह बार-बार लेखक की ओर हसरत भरी आँखों से देखता है लेकिन लेखक की ओर से सकारात्मक संकेत नहीं पाकर उसके चेहरे पर रोष के प्रकट होने लगते हैं। प्रेमचंद आगे लिखते हैं–"कह नहीं सकता। बच्चे ने अपनी माँ की अदालत में अपील करने की जरूरत समझी या नहीं। आमतौर पर बच्चे ऐसी हालातों में माँ से अपील करते हैं। शायद उसने कुछ देर के लिए अपील मुल्तवी कर दी हो।"[21] शिशु की मनोदशा को प्रेमचंद स्वयं खोल देते हैं। कहानी में जो केन्द्रीय तत्व है, वह है दरवाजा। दरवाजे के उस पार बच्चे की माँ है। इस कारण वह बार-बार दरवाजे की ओर देखता है और उसे खुला पाकर वह आश्वस्त होकर खेलने में जुट जाता है। बच्चे की आशा बंधी है कि माँ पास में ही है। हलवा न मिलने पर बच्चा उद्विग्न हो जाता है, लेकिन तभी

लेखक उसे एक नई चीज दे देता है। बच्चों की स्मरण शक्ति कमजोर होती है। नई चीज पाते ही वे पिछली बातें भूल जाते हैं। बच्चे को फाउन्टेन पेन मिल गया और वह खुश होकर फाउन्टेन पेन की 'दशा और दिशा' समझाने में लग गया। तभी अचानक दरवाजा बंद हो जाता है। एकाएक सब कुछ रूक सा जाता है। यहाँ का वर्णन कितना काव्यात्मक है–"एकाएक दरवाजा हवा से खुद-व-खुद बंद हो गया। पट की आवाज बच्चे के कानों में आई। उसने दरवाजे की तरफ देखा। उसकी यह व्यवस्तता तत्क्षण लुप्त हो गई। उसने फाउण्टेनपेन को फेंक दिया और रोता हुआ दरवाजे की तरफ चला क्योंकि दरवाजा बंद हो गया था।"[22]

बच्चों में संवेदनशील इतनी तीव्र होती है कि **'पट'** की आवाज होते ही बालक के मन-मस्तिष्क में यह जानकारी हलचल मचा देती है कि वह अपनी माता से दूर हो गया। फिर तो खिलौना और मिठाई क्या, सारे जहाँ को माँ के लिए छोड़ा जा सकता है। प्रेमचंद ने बड़ी सूक्ष्मता से तथा अत्यन्त कौशल के साथ शिशु मनोविज्ञान के इस पक्ष को जीवंत किया है। कहानी को पढ़ने के के बाल-संसार के मर्मज्ञ वसीला सुखोस्वी-स्की का यह कथन कितना सटीक एवं सही लगता है–"जो प्रकृति में सबसे कोमल, सबसे सूक्ष्म और सबसे अधिक संवेदनशील है और यह है–बाल मस्तिष्क। बाल मस्तिष्क के बारे में सोचते हुए मुझे गुलाब के फूल का ख्याल आता है, जिसकी पंखुड़ी पर ओस की बूंद थरथरा रही है। कितनी सावधानी, कितनी सतर्कता और प्यार से यह फूल तोड़ना होगा, ताकि ओस की यह बूंद न गिरने पाए।"[23]

खेल

प्रेमचंद ग्रामीण जीवन के रचनाकार हैं। वे स्वयं काफी समय तक गाँवों में रहे थे। इसका असर उनके साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। बालकों के जीवन-जगत से संबंधित कहानियाँ भी इससे अछूती नहीं रह सकी है। पीछे के पृष्ठों में जितनी कहानियों को जिक्र मैंने किया है, लगभग सभी का संबंध गाँवों से है। गाँव में अभाव, गरीबी, लाचारी व विवशता होती है। इसके बावजूद प्रेमचंद उसमें भी जीवन जीने के अंश तलाश लेते हैं। **'खेल'** कहानी कुछ इसी पृष्ठभूमि पर लिखी गयी और यह बाल मनोविज्ञान की एक नई झाँकी पेश करती है।

'खेल' कहानी मूलत: उर्दू में लिखी गई है। लेकिन प्रेमचंद रचनावली भाग-14 में संकलित **'खेल'** कहानी में कठिन उर्दू शब्दों के साथ कोष्ठक में हिन्दी के शब्द भी दिए गए हैं। इससे इस कहानी का अध्ययन करने में मुझे थोड़ी सुविधा हो गई। **'खेल'** कहानी बच्चों के खेल मनोविज्ञान पर आधारित है। बच्चों की दुनिया में खेल का क्या महत्व होता है, यह बताने की जरूरत नहीं।

बच्चों को खेलने के लिए यह जरूरी नहीं कि उनके पास खिलौने हों। वे किसी भी तरह खेल-कूदकर खुशी पा लेते हैं। यह उनकी खेल-दुनिया का अपना निजी मामला है।

'खेल' में ग्रामीण परिवेश के बच्चे हैं। गरीब, अभावग्रस्त, विवशता में जीने वाले, लेकिन उनमें जिजीविषा की कमी नहीं। कहानी में फुन्दन नाम का लड़का चिचिलाती धूप के कारण कम, और 'बड़ों' के अंकुश के कारण घर के अन्दर बड़ा विकल हो रहा है। बाहर बुढ़िया पहरेदार की तरह तैनात है। वह बच्चों की स्वच्छंदता की सबसे बड़ी दुश्मन है। बच्चे इसलिए इससे दूर भागते हैं। बच्चे 'बंदिशें' नहीं चाहते और इसके लिए जिम्मेदार व्यक्ति को वे कतई पसंद नहीं करते। फुन्दन बुढ़िया की एक से बढ़कर एक बहाने गढ़ के सुनाता है और उसके साथ सवाल जवाब में फंसने की बजाय वहाँ से भाग खड़ा होता है।

कहानी में एक अदृश्य पात्र हैं–जतीन (खोंमचे वाला)। गाँवों में महारी, बैलून वाले, खोंमचेवाले, बाँसुरीवाले तथा जादू दिखाने वाले बच्चों के सर्वाधिक प्रिय होते हैं। इनकी आहट पाते ही बच्चे शोरगुल मचाते हुए घरों से निकल पड़ते हैं। बच्चे इनकी खूब प्रतीक्षा करते हैं। जतीन के खोंमचे में कोई मोहन भोग और चम्मच नहीं होता। प्रेमचन्द लिखते हैं–

"उसके खोंचे में मीठे और नमकीन सेव, तिल या रामदाने के लड्डू, कुछ बताशे और खुट्टियाँ, कुछ पट्टी होती थीं। उसका एक मैला-सा बोसीदा (फटा-पुराना) कपड़ा पड़ा होता था, मगर गाँव के बच्चों के लिए वह ख्वान-ए-नेमत (अच्छी-अच्छी खाने की चीजें से भरा वाला) था, जिसे खड़े होकर दोषों के लिए सारे बच्चे बेताब रहते थे।"[24]

ध्यान देने योग्य है कि गाँव के बच्चों में ऐसे बच्चे कम थे, जो कुछ खरीदने लायक स्थिति में थे, लेकिन खोंमचे के आसपास रहने में ही उनके बालमन को जो खुशी मिलती थी, वह अशेष थी। बच्चे कहीं से भी अपने लिए खुशी के अवसर ढूँढ़ लेते हैं इन्हीं बालकों में फुन्दन भी था। फुन्दन को देखकर हामिद की याद आती है। फुन्दन भी गरीब है, लेकिन उसमें उत्साह, उमंग और उर्जा की कमी नहीं। ऐसे बच्चे कभी पस्त नहीं होते, लड़ते रहते हैं और खुशी के पल ढूँढ़ निकालते हैं। प्रेमचंद फुन्दन के बारे में लिखते हैं–"और लड़के मिठाइयाँ खाते थे, वह सिर्फ ग़रसना (भूखी) निगाहों से देखता था। रोने और रूठने, तिफलाना (बालोचित) मिन्नत और खुशामद एक से भी उसकी मक्सद-बरारी (उद्देश्यपूर्ति) न होती थी, गोया नाकामी ही उसकी तकदीर में लिखी हो। मगर इन नाकामियों के बावजूद उसका हौसला पस्त न होता था।"[25]

बच्चों की लालसा का क्या कहना ! कब कौन-सी चीज़ उनके मन को भा जाए, यह कहना

मुश्किल है। यहाँ तो अभाव की दुनिया में बच्चे हैं। फुन्दन को गरी और इमर्तियाँ खाए पता नहीं कितने दिन हो चुके थे। उस स्वाद को वह आज तक नहीं भूल पाया था। दूबारा कभी इमर्ती खाना नसीब नहीं हो सका था। आज इतने दिनों बाद जब जतीन ने उसे लाने का वायदा किया, तो बालमन स्वाद कल्पना में खो गया। वह सुबह से उत्साहित है। अपनी चिरइच्छित वस्तु पाने के लिए बच्चों के मन में कितना उमंग एवं कितनी उत्सुकता रहती है, इसका मनोहर चित्र यहाँ उपस्थित है–"आज फुन्दन दोपहर को न सोया। जतीन ने आज कच्ची गरी और इमर्तियाँ लाने का जिक्र किया था। यह घबर लड़कों की उस दुनिया में किसी अहम (महत्वपूर्ण) तारीखी–वाकिआ (ऐतिहासिक-घटना) से कम न थी। सुबह ही से जतीन की तरफ दिल लगा हुआ था। ऐसी आंखों में नींद कहाँ से आती?''[26] फुन्दन को जतीन की प्रतीक्षा करते-करते शाम हो गई। अंतत: उमंग से भरा बाल हृदय मायूस हो गया। उदासी की सघनता इतनी बढ़ी कि वह रोने तक लगा।

अब कहानी में एक मार्मिक मोड़ आता है। इमर्ती खाने की लालसा में फुन्दन झूठी मिठाइयाँ (कंकड़-पत्थर) को एक झब्बे में भरकर जतितर (खोमचे वाला) की भूमिका में आ जाता है। प्रेमचंद इस दृश्य पर मुग्ध हैं। वे लिखते हैं–"जतीन के आगे-आगे चलकर क्या उसे वह, मुसर्रत (खुशी) हो सकती थी जो इस वक्त जतीन बनकर हो रही थी? वह हवा में उड़ा जा रहा था–सराब (मृग-तृष्णा)' में हकीकत का मजा लेता हुआ, नकल में अस्ल सूरत देखता हुआ। खुशी अस्बाब (कारण) से किस कदर बेनियाज (नि:स्पृह, आजाद) है। इसकी चाल कितनी मस्ताना थी? गरुर से उसका सिर कितना उठा हुआ था।''[28]

यह हाल केवल फुन्दन का ही नहीं है, गाँव के दूसरे लड़के भी इस कौतुक-कीड़ा में शामिल हो जाते है। आखिर वे भी तो फुन्दन की ही श्रेणी के हैं। उनकी संवेदनाएँ भी तो वही है। कोई फुन्दन के इस अजीब कारनामें पर आश्चर्य नहीं करता, नहीं कुछ जानना समझना चाहता है, वे सब के सब बच्चे हैं और बच्चे हर काम में निहितार्थ नहीं देखते। अब खरीद-बिक्री की यह अद्‌भुत खेल शुरू हो जाता है–

"मन्नू ने एक टीकरा देकर कहा, "जतीन, एक पैसे की खुट्टियाँ दे दो।''

जतीन ने एक पत्ते में तीन-चार कंकड़ रखकर दे दिए।

खुट्टियों में इतनी शारीनी (मिठास), इतनी लज्जत (आनन्द, स्वाद) कब हासिल हुई थी?''[28]

पूरे संसार में खेल का ऐसा विलक्षण दृश्य कहाँ मिलेगा नि:सन्देह प्रेमचंद ने बाल मनोविज्ञान की गहराई में पैठकर यह कहानी लिखी है।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-2, पृ० सं० 150
2. शशी चित्तौड़ा एवं हरिशचन्द्र नरसावत, शिशु एवं बाल मनोविज्ञान, पृ० सं० 129
3. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-2, पृ० सं० 151
4. वही, पृ० सं० 153
5. वही, पृ० सं० 150
6. वही, पृ० सं० 154
7. वही, पृ० सं० 155
8. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-3, पृ० सं० 98
9. वही, पृ० सं० 100
10. शशी चित्तौड़ा एवं हरिशचन्द्र नरसावत, शिशु एवं बाल मनोविज्ञान, पृ० सं० 77
11. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-3, पृ० सं० 101
12. वही, पृ० सं० 101
13. वही, पृ० सं० 99
14. वही, पृ० सं० 99
15. वही, पृ० सं० 99
16. वही, पृ० सं० 99
17. वही, पृ० सं० 101
18. वही, पृ० सं० 101
19. प्रेमचंद रचनावली, भाग-14, पृ० सं० 402
20. शशी चित्तौड़ा एवं हरिशचन्द्र नरसावत, शिशु एवं बाल मनोविज्ञान, पृ० सं० 98
21. प्रेमचंद रचनावली, भाग-14, पृ० सं० 403
22. वही, पृ० सं० 403
23. वसीली सुखोम्लीन्स्की, बाल हृदय की गहराइयाँ, पृ० सं० 42-43
24. प्रेमचंद रचनावली, भाग-14, पृ० सं० 471
25. वही, पृ० सं० 471-472
26. वही, पृ० सं० 472
27. वही, पृ० सं० 473
28. वही, पृ० सं० 473

निमंत्रण–

'निमंत्रण' कहानी में बच्चों की बालसुलभ प्रवृत्तियों का सुन्दर वर्णन है। पंडित मोटे राम शास्त्री को रानी साहिबा भोज पर आमंत्रित करती हैं। पंडित जी अपने पूरे परिवार को वहाँ लेकर जा रहे हैं। वे अपने बच्चों को अलग-अलग बाप का लड़का बनाकर वहाँ ले जाना चाहते हैं। कहानी में एक तरफ बाप (मोटेराम) की धूर्तता एवं क्षुद्धता है, तो दूसरी तरफ बालकों का सरल, अबोध एवं निश्छल रूप। पंडित जी सबको बाप का अलग-अलग नाम रटाते हैं, लेकिन जब परीक्षा लेते हैं, तब बेनी भूल जाता है। वस्तुत: "अभ्यास का नियम उपयोगिता पर आधारित है। वे क्रिया कलाप जिन्हें बालक एक बार सीख लेता निरंतर उपयोग में आने से बहुत कम भूलता है। ठीक इसके विपरीत अनुपयोगी कार्य या क्रियाएँ अभ्यास के अभाव में भूल जाता है। इसे बारम्बारता का नियम भी कहा जाता है क्योंकि बार-बार अभ्यास करने से बालक के अनुभव सुदृढ़ होते हैं एवं स्मृति में स्थायी रूप से बने रहते हैं।"[1]

फेकूराम सबसे छोटा है। छोटे बच्चे अपेक्षाकृत अधिक भोले एवं निष्कपट होते हैं। जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं, उनमें दुनियादारी की समझ आती जाती है और वे चालाकी करना भी सीख जाते हैं। इसलिए मोटेराम के पड़ोसी चिंतामणि इस रहस्य का पता लगाने के लिए फेंकूराम से पूछते हैं। तभी मोटेराम बीच में टपक पड़ते हैं–"अभी क्या पढ़ेगा। दिनभर खेलता है।"[2]

बच्चे की प्रशंसा कीजिए; उन्हें प्रोत्साहित कीजिए, वे आपके लिए कुछ भी कर सकते हैं। लेकिन हतोत्साहित करने पर उनके कोमल हृदय को ठेस पहुँचती है। फिर वे स्वयं को नहीं रोकत सकते। यहाँ फेकूराम के बालसुलभ भोलापन का सुन्दर चित्रण है–"फेंकूराम इतना बड़ा अपराध अपने नन्हें-से सिर पर क्यों लेता। बाल-सुलभ गर्व से बोला–हमको तो याद है, पंडित सेतूराम पाठक हम याद भी कर लें, तिस पर भी कहते हैं, हरदम खेलता है।"[3] यही नहीं, बाप ने किसी गैर के सामने बच्चे की आलोचना की थी, बालमन इस आघात को सहन नहीं कर पाया। फेकू रोने लगा। कुद देर बाद मोटेराम दुबारा परीक्षा लेते समय फेंकू से पूछते हैं, तो उसका रोष अभी कम नहीं है। तत्क्षण वह विरोध दर्ज करता है। फिर थोड़ा मरहम पाकर तपाक से बता देता है। संवाद देखने योग्य है–

"मोटे – और तुम्हारे पिता का नाम, फेकू?

फेकू – बता तो दिया, उस पर कहते हैं, पढ़ता नहीं !

मोटे – हमें भी बता दो।

फेकू – सेतूराम पाठक तो हैं।''[4]

बालकों पर अपने परिवार का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। फेकू अबोध बालक तो है ही, पारिवारिक माहौल के कारण उसे खाने-पीने के प्रति रूचि (लालच) भी अधिक है। यद्यपि वह बच्चा है, लेकिन फिर भी बाप के चरित्र का कुछ असर तो बच्चों पर पड़ेगा ही। चिंतामणि जब दुबारा उससे पूछते हैं, तो वह अपने पारिवारिक प्रभाव के कारण पहले तो मिठाई माँगता है, फिर बालपन के कारण सच बता देता है। बच्चे दाँव-पेंच नहीं जानते। रानी के यहाँ जाने से पूर्व भी सभी बच्चे हल्ला मचाते हैं और चबेना आने पर उसके लिए मार-पीट भी करते हैं। इसी प्रकार, रानी साहिबा के भोजन की खबर आते ही बच्चे कूद-कूद कर भोजन कक्ष में जाते हैं। भोग की तैयारी होते ही वे घंटा, घड़ियाल, शंख और करताल उठाकर तैयार हो जाते हैं। भोजन के प्रति उत्कण्ठा के कारण ही यह उतावलापन है। अंत में सच्चाई जानने के लिए रानी साहिब फेकू का सहारा लेती हैं लेकिन इसके लिए भी उन्हें मिठाई की बात करनी पड़ती है। रानी साहिबा और फेकू का संवाद कुछ यूँ है–

"क्यों फेकू राम, मिठाई खाओगे !

फेकू – इसीलिए तो आये हैं।

रानी – कितनी मिठाई खाओगे?

फेकू – बहुत-सी (हाथों से बताकर) इतनी !''[5]

एक बात यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि आशय यह नहीं है कि फेकू या पंडित जी के दूसरे बच्चें बाप की तरह पेटू थे। मिठाई आदि के प्रति रूचि तो लगभग हर बच्चे में होती है। लेकिन इन बच्चों पर परिवार का भी प्रभाव है, इसमें मुझे सन्देह नजर नहीं आता। यह दूसरी बात है कि कि इस पूरे प्रसंग में बच्चों की निष्कपटता एवं मासूमियत भी उभरकर आती है। रानी साहिबा के पूछने पर बच्चे फटाफट रटे गए बाप का नाम बताते हैं। जब अलगू भूल जाता है–तो फेकू बालसुलभ भोलेपन के साथ तपाक से बोलता है–"हम बता दें। भैया भूल गये।''[6] प्यारे बालक को यह तनिक भी भान नहीं है कि इससे उसके बाप की इज्जत उतर जाएगी।

भोजन कक्ष में कूद-कूद कर जाने के पीछे भी बच्चों का बालोचित उत्साह भी साथ है। वहीं रानी साहिबा के साथ फेकू के संवाद में भी फेकू का नादानमन प्रस्तुत होता है। लौटते समय जब बच्चों की अम्मा पूछती है–"काहे रे, अपने बाप केर नाँव बताय देते।''[7] अब बच्चों को अपने माँ-बाप के छल-प्रपंच का क्या पता? वह तो बस बालक हैं, जवाब देतो है–"और क्या, वे तो

सच-सच पूछती थीं।''[8] इस प्रकार हम कहानी में बच्चों का स्वाभाविक चरित्र अपने मूल रूप में चित्रित हुआ है।

अलग्योझा–

बच्चों का संसार अद्‌भुत होता है। उनके मन में किसी के लिए ईर्ष्या-द्वेष, ऊँच-नीच या बैर-कटुता की भावना नहीं होती। **'अलग्योझा'** में पन्ना, रग्घू की सौतेली माँ है। उसके चार बच्चे हैं। धन्ना को रग्घू से बैर है, लेकिन बच्चों का नहीं। बच्चों के लिए वह **'रग्घू दादा'** है इसका पहला प्रमाण यह दृश्य है–"रग्घू अपने झोंपड़े में बैठा ऊख की गँडेरियाँ बना रहा है, तीनों लड़के उसे घेरे खड़े हैं और छोटी लड़की गर्दन में हाथ डाले उसकी पीठ पर सवार होने की चेष्टा कर रही है।''[9] बच्चों को रग्घू से प्यार मिलता है, इसलिए वे उसके पास जाते हैं। उन्हें इससे क्या मतलब कि उनकी माँ को रग्घू से चिढ़ है। रग्घू दादा ने बच्चों के लिए गाड़ियां बनाई हैं। बच्चे खूब उत्साहित हैं। तभी तो माँ के पूछते ही केदार एक साँस में सारा हाल सुना देता है–"काकी, रग्घू दादा ने हमारे लिए दो गाड़ियाँ बना दी हैं। यह देख, एक पर हम और खुन्नू बैठेंगे, दूसरी पर लक्ष्मन और झुनिया। दादा दोनों गाड़ियाँ खीचेंगे।''[10]

माँ को अपनी **'बग्घी'** के बारे में बताने मात्र से बच्चों के संतोष नहीं होता, वे तत्काल परीक्षण भी कर डालते हैं और गाड़ी पर सवारी शुरू हो जाती है। वे अपनी दुनिया में मस्त हैं। उनका दिल उमंग से भर उठा है। प्रेमचंद यह पूरा का पूरा दृश्य बड़े ही मनोरम ढंग से जीवंत कर देते हैं। बच्चों के लिए वह सवारी हवाई जहाज की यात्रा से कम आनंददायक नहीं है। उनका बालोचित उत्साह तो देखते ही बनता है–

"खुन्नू ने कहा–काकी सच, पेड़ दौड़ रहे थे।

लछमन – और बघिया कैसी भागीं, सब-की-सब दौड़ी।

केदार – काकी, रग्घू दारा दोनों गाड़ियाँ एक साथ खींच ले जाते हैं।

झुनिया सबसे छोटी थी। उसकी व्यंजनाशक्ति उछलकूद और नेत्रों तक परिमित थी–तालियाँ बजा-बजाकर नाच रही थी।''[11]

आगे की कहानी में एक और नारी का अवतरण होता है, मुलिया। यह रग्घू की पत्नी है। उसके आते ही दिलों के बीच की खाई और चौड़ हो जाती है। इसके बावजूद रग्घू के प्रति बच्चों का प्यार एवं सम्मान पूर्ववत है। बचपन में जो छाप पड़ी है, इतनी जल्दी नहीं छूट सकती। मदरसे से

लौटने पर जब माँ खाने को बोलती है तो केदार एवं खुन्नू रग्घू को बुलाए बिना नहीं खाना चाहते। बच्चे इस दरार से परेशान एवं नाखुश हैं। तभी तो केदार पूछता है–"भइया ने भाभी को डाँटा नहीं?"[12] उसे पता है, इस अलगाव की जड़ भाभी है।

ऐसा नहीं है कि रग्घू के प्रति बच्चों की भावना में परिवर्तन नहीं होता। जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं, उनका सारी स्थितियों से पाला पड़ता है। उनके मन में भी दूरी बढ़ती जाती है। रग्घू के लिए कभी जान देने वाले बच्चे अब दवा दारू के लिए भी उसे नहीं पूछते। यह सब अचानक नहीं होता। इसकी शुरूआत भी कच्ची उम्र से ही हो जाती है। एक बार जब बच्चे आम चुनने के लिए बागों की ओर जाना चाहते हैं, तो घर से निकलते समय अचानक उन्हें रग्घू दादा का ध्यान आता है। बच्चों के मन में डर है, लेकिन नई परिस्थिति बच्चों के मानस पटल पर अपनी परत जमा रही है। इस बातचीत से स्पष्ट हो जाता है–

"खुन्नू– दादा जी बैठे हैं

लक्ष्मण – मैं न जाऊँगा, दादा घुड़केंगे।

केदार – वह तो अब अलग हो गये।

लक्ष्मण – तो अब हमको कोई मारेगा, तब भी दादा न बोलेगे?

केदार – वाह, तब क्यों न बोलेंगे?"[13]

अचानक यहाँ बाल सुलभ जिज्ञासा प्रकट हो जाती है। लेकिन बाल हृदय अभी कौर कागज है, वह इस बात के प्रति आश्वस्त है कि रग्घू दादा अभी इतने भी पराए नहीं हुए हैं कि बच्चे की रक्षा न कर सकें। लड़के डरते-डरते निकले, लेकिन रग्घू की ओर से कोई रोक-टोक न पाकर निर्भीक होकर बढ़ चले। बच्चों का यह स्वभाव होता है कि पहले वे कोई गलत काम (शरारत, चुहल आदि) बड़ों से छुपकर करना चाहते हैं। लेकिन एक गलती करने पर जब उन पर बड़ों की ओर से कोई नाराजगी या अंकुश नहीं मिलती तो धीरे-धीरे वे निर्विघ्न होकर आगे बढ़ जाते हैं। इस कहानी में बच्चों के मन में अलगाव का बीज यहीं से पनपता है।

'अलग्योझा' में प्रेमचंद ने कुछ जीवन-यथार्थ के प्रश्नों को भी उठाया है। यहाँ बालक भी साथ-साथ हैं, अपनी स्वाभाविकता के साथ। इस क्रम में दो कहानियों के बारे में अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहूँगा एक है, **'कप्तान साहब'** और दूसरी **'दो बैलों की कथा'**। **'कप्तान साहब'** को भी बाल-मनोविज्ञान की कहानी माना जाता है। मुझे अपने अध्ययन के दौरान ये कहानी बालकों पर आधारित नहीं लगी। प्रेमचंद आरम्भ में ही लिख देते हैं–"वह सैलानी, आवारा,

घुमक्कड़, युवक था।''[14] वैसे कथा पात्र जगतसिंह मुझे किशोरावस्था एवं युवावस्था के बीच की आयु का लगता है। उसकी समस्त गतिविधियाँ भी वैसी ही हैं। बहरहाल अब दूसरी कहानी की बात।

दो बैलों की कथा

प्रेमचंद की बच्चों के लिए लिखी कहानियों में ज्यादातर जानवरों से संबंधित हैं। उन कहानियों का कथ्य, भाषा, शिल्प, सभी कुछ बालोपयोगी हैं। **'दो बैलों की कथा'** का कथ्य तो ठीक है, पर केवल जानवर कथा होने के कारण इसे बालक संसार से संबंधित साबित नहीं कहा जा सकता। कहानी की शैली को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि प्रेमचंद ने यह कहानी बच्चों के लिए लिखी है। यद्यपि कहानी में कथ्य एवं शैली सरस एवं ग्राह्य है, लेकिन बच्चों के लिए नहीं, हाँ कहानी में बालकों की जीवंत उपस्थिति जरूर है, जिसकी चर्चा मैं कर रहा हूँ।

कहानी में बालपात्र के नाम पर प्रभावशाली भूमिका के रूप में एक बालिका है, लेकिन दो जगह बाल समूह की सक्रियता भी कहानी का प्रमुख अंश है। पहली बार जब हीरा और मोती झूरी के साला के घर से रस्सी तुड़ाकर वापस भाग आते हैं तो सुबह-सुबह झूरी के द्वार पर दिलचस्प दृश्य उपस्थित जाता है। बालकों की टोली इसमें पीछे क्यों रहे "घर और गाँव के लड़के जमा हो गये और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशु-वीरों को अभिनन्दन पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़ा, कोई चोकर, कोई भूसी।''[15]

बैलों का आदर-सत्कार करने के बाद बालकगण आपस में कौतुहल पूर्ण टिप्पणियाँ भी करते हैं–

"एक बालक ने कहा–ऐसे बैल किसी के पास न होंगे। दूसरे ने समर्थन किया–इतरी दूर से दोनों अकेले चले आये।

तीसरा बोला – बैल नहीं हैं वे, उस जनम के आदमी हैं। इसका प्रतिवाद करने का साहस किसी को न हुआ।''[16]

कहानी के अन्त में भी जब बैल लौटकर आते हैं तो लड़कों की भीड़ इस दृश्य को देखने के लिए वहाँ जमा हो जाती है। कहानी की बालिका एक तरह से अनाथ ही है। सौतेली माँ की प्रताड़ना से उसे अनाथ मानना ही ठीक होगा। झूरी का साला जब बैलों को दूसरी बार वापस लेकर

आता है तो ढंग से खाना नहीं देता। वैसी हालत में वही बालिका रोटियाँ लेकर निकलती है और उन्हें खिलाकर लौटकर जाती है। दो बातें इस प्रसंग के गर्भ में छिपी है–बालिका की सौतेली माँ अक्सर उसे सताती है, एक तरह से गुलाम की तरह रखती है। संभव है कभी-कभी उसे खाना भी कम मिलता हो। इस कारण उस बालका का नन्हा मन बैलों की पीड़ा को गहराई से समझता है। दूसरी बात प्रेमचंद स्वयं कह देते हैं। बैलों को पाकर बालिका को एक तरह से कोई हमजोली; साथी सा मिल गया था। बालिका का दर्द भी लगभग वही था, जो बैलों का था। स्नेह पाकर बालिका को बैलों से अपनापन हो गया। बैल भी बालिका का हाथ चाटकर, पूछ खड़ी कर, अपना प्यार प्रदर्शित करते। अब तक तो बालिका का भोला-भाला एवं दयालु रूप ही दीखता है। एक दिन उसकी समझदारी का भी परिचय मिलता है। घर के अंदर बैलों को नाथने की चर्चा सुनकर लड़की चौक्न्ना हो जाती है और साहस का परिचय देते हुए दोनों बैलों को खोल देती है। यही नहीं, उसकी सूझ का कमाल तो आगे है–"सहसा बालिका चिल्लायी–दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं, ओ दादा ! दादा ! दोनों बैल भागे जा रहे है।, जल्दी दौड़ो।"[17]

बूढ़ी काकी

एक ऐसा ही उदात्त चरित्र लेखक की प्रसिद्ध कहानी **'बूढ़ी काकी'** में भी है। संयोग से वह भी बालिका है–लाड़ली। वैसे तो कहानी का केन्द्रीय चरित्र बूढ़ी काकी है, लेकिन लाडली की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। आरम्भ में लेखक एक टिप्पणी करता है–"बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है।"[18] कहानी जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, इस टिप्पणी का अर्थ खुलता जाता है। बच्चों के समान बूढ़े भी पराश्रित होते हैं। बच्चे जहाँ माँ-बाप पर आश्रित होते हैं, वहीं, बूढ़े अपने बेटे, बहू पर। बुढ़ापा उम्र का ढलान है, इस कारण इच्छाएँ बढ़ जाती हैं। बूढ़ों में भी बच्चों की तरह उत्सुकता एवं कौतूहल रहता है। माँ-बाप के प्रभाव में आकर लड़के बूढ़ी काकी को अक्सर चिढ़ाते-सताते रहते हैं। प्रेमचंद ने यहाँ यह भी लिखा है कि–"लड़कों को बुड्ढ़ों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है।"[19]

मुझे प्रेमचंद की यह बात गले नहीं उतरती। बूढ़े, बच्चों को कहानियाँ भी सुनाते हैं। उन्हें उनके माँ-बाप की अपेक्षा अधिक स्नेह एवं स्वतंत्रता देते हैं। अकारण नहीं कि बच्चे अपने दादा-दादी एवं नाना-नानी के साथ ज्यादा घुले-मिले रहते हैं। कहानी में यह मत केवल बुद्धिराम के लड़कों के सन्दर्भ में की जाती तो मेरे विचार से यह ज्यादा युक्ति संगत होता।

'बूढ़ी काकी' में लड़के-लड़की का भेद भी आंशिक रूप से उजागर हुआ है। लाड़ली अपने

दोनों भाइयों के डर से मिठाई-चबैना काकी के पास छुपाकर खाती है। प्रेमचंद लिखते हैं–"यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महँगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से कहीं सुलभ थी।"[20]

भाइयों की अपेक्षा लाडली के चरित्र को प्रेमचंद ने नहीं के बराबर लिखा है। उस समय भी लड़के-लड़कियों में भेद प्रचलित था, लेकिन आश्चर्य है प्रेमचंद ने बालपात्रों को लेकर इस पर कुछ नहीं लिखा। यहाँ तक कि बालकों से संबंधित लगभग सभी कहानियों के पात्र लड़के है, लड़की नहीं। प्रेमचंद प्रगतिशील रचनाकार थे और बच्चों से इतर उन्होंने नारी प्रश्न को प्रमुखता से उठाया भी है। जब "**दूध का दाम**" जैसी कहानी में जाति-प्रश्न को इतने संयम और कुशलता के साथ वे उठाते हैं, फिर स्त्री विमर्श को क्यों भूल जाते हैं?

कहानी में भोज के दिन काकी को खाने के लिए कोई नहीं पूछता। यहाँ तक कि बुद्धिराम आँगन से घसीटते हुए काकी को अंदर पटक देता है। इस घटना पर लाडली का कोमल हृदय तार-तार हो जाता है। वह मन-ही-मन अपने माँ-बाप पर कुढ़ रही है। अंत में जब अम्मा सो जाती है, तो वह चुपके से अपने हिस्से की पूड़ियाँ लाकर काकी को खिलाने लगती है। ध्यान देने योग्य है, लाडली ने वह पुड़ियाँ अपनी गुडियों की पिटारी में रखी है। बच्चों की दुनिया में उनका हर काम अनोखा होता है। लाडली चौकन्ना होकर काकी के पास आती है। उसके मन में अम्मा का डर है। "**दो बैलों की कथा**" में भी बालिका चुपके से आकर बैलों को रोटी खिला जाती है। प्रेमचंद की कहानियों में ऐसे चरित्रो के बारे में प्रसिद्ध आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की सटीक टिप्पणी है–"प्रेमचंद की कहानियों में एक और खास चीज़ दिखाई देती है। वह यह है कि उनके कहानी चरित्रों में एक कोई चरित्र ऐसा होता है, जिसमें मनुष्यता जीवित रहती है। जहाँ वे अर्थ संबंधों की ओर ले जाते हैं, वहाँ भी एक मानवीय तत्व ऐसा होता है जो अर्थ-संबंधों के घेरे में नहीं बँध पाता।"[21]

कुछ बातें और

प्रेमचंद की ढेरों कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें बाल-चरित्रों की उपस्थिति प्रसंगवश है तथा कई में वे गौण रूप में चित्रित हुए हैं। मैं यहाँ बाल मनोविज्ञान की प्रवृत्तियों (विशेषताओं) को ध्यान में रखते हुए इन सब का अध्ययन एक साथ प्रस्तुत कने का प्रयास कर रहा हूँ। जिन कहानियों पर सीधे स्वतंत्र बात हो चुकी है, उनकी चर्चा मैंने यहाँ नहीं किया है।

बच्चे कच्ची मिट्टी के घड़े होते हैं उन्हें जैसा चाहा जाए, ढाला जा सकता है। यह कार्य

वातावरण करता है। बच्चे जिस परिवेश में रहते हैं, उसी अनुसार उनका व्यक्तित्व बनता-बिगड़ता है। बालकों के संदर्भ में यह बात इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि बचपन का असर जीवनभर रहता है। प्रेमचंद की कहानियों में यह प्रभाव बहुतायत में देखने को मिलता है।

'**रूहे-हयात**' (जीवन की प्राण शक्ति) कहानी में यतीम लड़की होश सभालते ही मज़दूरी करने लगती है। '**मोटेराम का नैराश्य**' में मोटे राम के शिष्य उनकी संगीत में रहकर गाली देना सीख गए हैं। घसीटे के दरवाजे पर जाकर वे उसे दुष्ट, पापी, चाण्डाल कहकर कोसते हैं। '**गुप्तधन**' कहानी में अपनी बाल सुलभ चंचलता को भुलाकर बालक मगन मज़दूरी करता है और अपनी बीमार बूढ़ी माँ के लिए रोटियों भी बनाता है। '**जेल**' कहानी में घर के अंदर स्वराज्य आंदोलन का माहौल पाकर भान पर भी इसका असर पड़ता है। वह अपनी तोतली बोली में कहता है–"अन्ना ऊँता लगे अमाला'', 'छलाज का मन्दिर देल में है।'[22]

'**बैर का अंत**' कहानी में परिस्थितियों के मारे बच्चे इधर-उधर माँग कर खाते हैं। खेतों तक में घुस जाते हैं। '**आभूषण**' कहानी में भी यही स्थिति है। '**पछतावा**' में जब बकाए लगान की नालिश हेतु सम्मन आया तो घर में बड़ों को रोते कलपते देख बच्चे भी रोने लगते हैं। '**सौभाग्य के कोड़े**' में नथुआ संगत में पड़कर तम्बाकू-पान की लत पकड़ लेता है और वातावरण बदलने पर संगीतज्ञ बन जाता है। '**प्रेरणा**' कहानी में सूर्यप्रकाश को यदि मोहन से प्रेरणा नहीं मिलती, तो वह बड़ा आदमी नहीं बन पाता।

बच्चों के खेल निराले होते हैं। बच्चों के खेल का कोई निश्चित प्रारूप या कायदा नहीं होता। वे अपने ढंग से खेल का आनन्द लेते हैं। प्रेमचंद ने बच्चों के खेल-मनोविज्ञान को गहराई के साथ पकड़ा है। '**खेल**' नाम की तो उनकी एक कहानी भी ही है। गाँवों के बच्चे, विशेषकर बच्चियाँ घरौंदे का खेल खूब खेलते हैं। '**विद्रोही**' और '**ज्योति**' कहानी में ऐसे प्रसंग हैं। '**पिस नहरी का कुआँ**' यद्यपि तिलस्मी मार्का की कहानी है, लेकिन वहाँ बच्चे गढ्डे खोदने का खेल खेलते हैं। रोज नए-नए बालक आते हैं और यह खेल चलता है। वस्तुत: इन खेलों के पीछे बच्चों के अंदर छिपी सृजनात्मकता का पता चलता है। प्रेमचंद की कहानियों में बच्चों का संसार अनोखे रूप में चित्रित हुआ है। बच्चों की सतरंगी दुनिया के दर्शन ये कहानियाँ कराती हैं। '**पंच परमेश्वर**' कहानी में पंचायत के समय बच्चे खेल-कूद रहे हैं। उत्सव आदि के समय बच्चे उत्साहित होकर खेलते कूदते हैं। '**शंखनाद**' कहानी में फेरीवाले के आने पर बच्चे उसे चारों ओर से घेर लेते हैं। कई बार वे घर से अनाज चुराकर उसके बदले में उससे मिठाईयाँ खरीदते है। '**स्वामिनी**' कहानी में परिवार के

लोग जब बाहर निकलने की तैयारी में हैं तो सबसे पहले बच्चे ही तैयार होते हैं। वे नए कपड़े पहन कर उछाह से भर उठे हैं। बाहर घूमने की उमंग रह-रहक कर उनके मन में हिलोरें ले रही हैं। **'नेउर'** कहानी में नेहर के आते ही बच्चे उसे चारों ओर से घेर लेते है, उछल-कूद मचाते हैं और नेउर को उसकी पत्नी के मर जाने की सूचना भी देते हैं। लेकिन नेउर के उदास हो जाने पर वे भी शांत हो जाते हैं। **'माता का हृदय'** में नौकर जब बच्चे को बिठाकर चले जाते हैं तो वह स्वभाव के अनुसार पानी में छप-छप करते हुए खेलने लगता है। **'बैर का अंत'** में बड़ो के बीच दुश्मनी है, लेकिन बच्चे जगेश्वर के पास आते हैं, अंत में बच्चों के कारण ही बैर का अंत होता है।

प्रेमचंद के बालपात्र निरे अबोध नहीं है। उनके अंदर एक समझ है, विशेषकर परिस्थितियों को समझने की। **'लॉटरी'** कहानी में कुंती का चरित्र बड़ा प्यारा है। वह अपने भाइयों को रोज किवाड बंद करके गुफ्तगू करते देखकर समझ जाती है कि दाल में कुछ काला है। दोनों भाई उसे बहलाने-फुसलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह लॉटरी का हाल पूरे घर में बता देती है। **'विश्वास'** कहानी में बालक पहले तो में बालक पहले तो मिस जोशी को देखता रहता है फिर अचानक पूछ बैठता है,

"हमाले दादा को कौन पकलेगा?''

मिस जोशी – सिपाही, और कौन?

बालक – हम सिपाही को मालेंगे।''[23]

फिर बच्चा अपना खेलने वाला डंडा लेकर आया। **'मंदिर'** कहानी का जियावन अपनी माँ को काम करते देख, खुद भी घास छीलता है और अपनी अम्मां के लिए साड़ियाँ लाने का वादा करता है। **'विद्रोही'** कहानी में शादी की बात सुनकर बालक (कृष्णा) शरमाकर भाग जाता है, जबकि तारा खड़ी रहती है। उसे अपने लड़की होने का एहसास है।

प्रेमचंद की कहानियों में बच्चों को प्राय: उनकी परिस्थितियाँ समझदार बनाती है। पीछे की कहानियों में मैं इसे सविस्तार दिखा चुका हूँ।

कहानियों में बच्चों की शरारतें खूब आई हैं। बच्चे प्यार में बिगड़ भी जाते हैं। **'स्वर्ग की देवी'** कहानी में दादा-दादी के प्यार में बच्चे बिगड़ जाते हैं। हमेशा अंट-शंट खाते रहते हैं। गालियों देना भी सीख जाते हैं। अंतत: सड़े फल खाने के कारण बच्चों को हैजा हो जाता है **'विमाता'** कहानी में भी माँ के प्यार में बच्चा हठीला और नटखट हो जाता है। **'माँ'** कहानी में

में तो अंकुश के बावजूद प्रकाश बिगड़ी हरकतें करता है। यद्यपि प्रकाश के चरित्र में थोड़ी अस्वाभाविकता आ गई है।

बच्चों का भोलापन, चंचलता, कोमलता और उनमें अन्तर्निहित अच्छाइयाँ कहानियों में सलीके से चित्रित हुई हैं। **'मांगें की छड़ी'** कहानी में कथावाचक के कंधे पर बच्चा मजे में घुमता है, बार-बार मचलता है। लेकिन कंधे से उतरते ही वह ठुनकने लगता है। वह अभी और घूमना चाहता है। बच्चे मन मुताबिक काम कें दखल नहीं चाहते। **'बौड़म'** में बच्चा सच बोलने के पहले बाप को देखकर डरता है, अंत में रोने लगता है। **'आधार'** कहानी में नन्हा वासुदेव भौजाई से अपनी शादी की बात करता है। उसे पता भी नहीं है, इसका मतलब क्या होता है? दो कर्बे में राजेन्द्र जब अपनी पत्नी की कब्र पर फूल चढ़ाते हैं, उस समय उनकी बालिका शोभा दौड़-दौड़ाकर तितली पकड़ती है। उसे यह भी विश्वास है कि उसकी माँ कब्र से निकलेगी। बालक को अपने हम उम्र से लगाव होता है। **'सौभाग्य के कौड़े'** में नौकर बथुआ और रत्ना का व्यवहार मित्रवत् है। बच्चों को जो स्नेह देता है, अपना समझता है, बच्चे उसी के हो जाते है। **'तथ्य'** कहानी में पूर्णिमा का बच्चा हमेशा अमृत के साथ रहता है। पूर्णिमा द्वारा डांटते समय जब अमृत का नाम लेती है तो वह चुप हो जाता है। वह अमृत को ही अपना बाप समझता है। **'लांछन'** में शारदा रजा मियां दिए हुए खिलौने लेकर उमंग से भर उठती है। **'बैर का अंत'** में जागेश्वर से प्यार पाने पर बच्चे उसे 'भैय्या' कहने लगते हैं। प्रेमचन्द की महत्वपूर्ण पंक्ति है–"लड़के शत्रु और मित्र को बूढ़ों से ज्यादा पहचानते हैं।"[24]

'गृहदाह' कहानी में सत्यप्रकाश विमाता द्वारा दुत्कारे जाने पर ज्ञानप्रकाश से स्नेह रखता है। ज्ञान को भी उससे बेहद लगाव है। बचपन का वह प्यार आगे भी बरकरार रहता है। कलकत्ते जाकर सत्यप्रकाश ज्ञान को नहीं भूलता। ज्ञान भी भाई के बिना शादी करने को तैयार नहीं होता। इस प्रवृत्ति के दृश्य **'बोध'**, **'महातीर्थ'**, **'माता का हृदय'**, **'भूत'**, **'भांजे की घड़ी'**, **'विश्वास'**, **'आधार'**, **'ज्योति'** आदि में भी है।

एक और महत्वपूर्ण पहलू का उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूँ। प्रेमचंद की बाल-मनोविाान संबंधी कहानियों में माता एवं पिता का चरित्र भी बालकों के संदर्भ में आया है। माता-पिता के व्यवहार का बच्चों के मानस पर कैसा प्रभाव पड़ता है, यह सब की कहानियों में स्पष्ट रूप से उद्घाटित हुआ है। कहानियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि प्रेमंचंद जहाँ माँ को प्राय: वात्सल्यमयी, स्नेह की प्रतिमूर्ति एवं त्यागमयी दिखाते हैं, वही बार-बार पिता का शुष्क चेहरा

सामने आता है। प्रेमचंद बार-बार माता के अनमोल प्रेम पर बलिहारी आते हैं–"मातृ-प्रेम, तुझे धन्य है। संसार में और जो कुछ है, मिथ्या है, निस्सार है। मातृ-प्रेम, ही सत्य है, अक्षय है, अनश्वर है।"[25] **'विमाता'**, **'लांछन'**, **'मंदिर'**, **'मा'**, **'प्रेमसूत्र'** आदि में माँ का चरित्र ढंग से उभरा है। **'होली की छुट्टी'** में लेखक बचपन के दिनों को याद करता हुआ घर को बढ़ता है। उसे माँ का प्यार बार-बार स्मरण होता है। प्रेमचंद ने कई बार सौतेली माताओं की निंदनीय रूप को दिखाया है, वही **'विमाता'** जैसी कहानियाँ भी लिखी हैं।

पिता के लिए प्रेमचंद के यहाँ नरम कोना नहीं आता। उनकी कहानियों पिता का चरित्र देखकर ऐसा लगता है, जैसे बाल-बच्चों की जिम्मेदारी केवल माँ की होती है। बाप का काम केवल बच्चों को पैदा करना होता है, उनके पचड़ों में फँसना नहीं।

'चोरी' कहानी में लेखक के घर में प्रवेश करते ही उसके पिता रौद्ररूप के साथ डपट पड़ते हैं। बालक की चीख निकल जाती है। वहीं जब वह अम्मा के पास जाता है तो वहाँ ममता की छाँव, प्यार की गोद मिलती है। **'लांछन'** कहानी में देवी का पति शक्की मिजाज का है। उसे शक है कि रजामियाँ के साथ उसी पत्नी का इश्क चल रहा है। इसलिए रजामियाँ द्वारा भेजे गये खिलौनों को अपनी बेटी शारदा के हाथों में देखता है तो आगबबूला हो उठता है। बच्चे को भी डाँट पिलाना है। लेकिन माँ (देवी) का बर्ताव बच्ची के प्रति ममत्व भरा है और वह बच्ची की भावनाओं को समझती है।

'ईश्वरी न्याय' कहानी में मुंशी सत्यनारायण लाल बाहर से तमतमाए हुए आते हैं। घर में घुसते ही उनका लड़का अपनी बाल सुलभ प्रवृत्ति के कारण मिठाई माँगता है। इसके बदले में उसके पिता श्री उसे तमाचे खिलाते हैं और बच्चे के इस अपराध के लिए जिम्मेदार उसकी माँ एवं दादी पर बरसते हैं। यह है उनका अपने बच्चे के प्रति पिता का उमड़ता प्यार! **'अलग्योझा'** कहानी में अपनी नई पत्नी के आने पर भोला महतो अपने बेटे **गप्पु** के प्रति उपेक्षा का भाव रखने लगता है। यही स्थिति **'गृहदाह'** में भी है। **'एक आँच की कसर'** में अपनी करतूतों का भांडा फूटने पर यशोदानंद अपने बेटे परमानन्द को खा जाने पर उतारू हो जाते हैं–"बार-बार परमानंद को कुपित नेत्रों से देखते थे और डंडा तौलकर रह जाते थे। इस शैतान ने आज जीती-जितायी बाजी खो दी। मुँह में कालिख लग गयी, सिर नीचा हो गया। गोली मार देने का काम किया है।"[26] बालक अपनी अज्ञानता और भोलेपन के कारण पर्चा पढ़ देता है, जिससे उसके पिता का असली चेहरा बेनकाब हो जाता है।

प्रेमचंद ने बालकों के साथ बड़ों के इस बर्ताव को शिद्दत के साथ महसूस किया था। तभी तो तमाम कहानियों में उन्होंने इस सवाल को उठाया है। **'कजाकी'** में वे कह ही चुके हैं कि–"बच्चों के साथ समझदार बच्चे बनकर माँ-बाप उन पर जितना असर डाल सकते हैं, जितनी शिक्षा दे सकते हैं, उतने बूढ़े बनकर नहीं।"[27] प्रेमचंद ने स्वयं अपने जीवन में पिता का प्यार नहीं पाया था, जितना कि वे माँ के करीब रहे थे। मुझे लगता है, इस ग्रंथि का असर उनके मन मस्तिष्क पर जरूर रहा होगा। इसकी पुष्टि **'घरजमाई'** कहानी में और स्पष्ट हो जाती है। लेखक स्वयं कहता है–"बच्चों के लिए बाप एक फालतू-सी चीज़-एक विलास की वस्तु है, जैसे घोड़े के लिए चने या बाबुओं के लिए मोहन भोग। माँ रोटी-दाल है। मोहन भोग उम्र भर न मिले तो किसका नुकसान है; मगर एक दिन रोटी-दाल के दर्शन न हों, तो फिर देखिए, क्या हाल होता है। पिता के दर्शन कभी-कभी शाम-सबेरे हो जाते हैं, वह बच्चे को उछालता है, दुलारता है, कभी गोद में लेकर या उंगली पकड़ सैर करने ले जाता है और बस, यही उसके कर्त्तव्य की इति है। वह परदेश चला जाय, बच्चे को परवाह नहीं होती; लेकिन माँ तो बच्चे का सर्वस्व है। बालक एक मिनिट के लिए भी उसका वियोग नहीं सह सकता। पिता कोई हो, उसे परवाह नहीं, केवल एक उछलने-कूदने वाला। आदमी होना चाहिए; लेकिन माता तो अपनी ही होनी चाहिए, सोलह आने अपनी; वही रूप, वही रंग, वही प्यार, वही सब कुछ। वह अगर नहीं है तो बालक के जीवन का स्रोत सुख जाता है।"[28]

इन कहानियों के अतिरिक्त प्रेमचंद की और भी कहानियाँ हैं, जिनमें बच्चे आते हैं। कई बार बच्चों की थोड़ी देर के लिए उपस्थिति होती है, लेकिन उतने में ही वे अपनी निश्चिंतता एवं मासूमियत का परिचय दे जाते हैं।

संदर्भ सूची

1. शशी चित्तौड़ा एवं हरिशचन्द्र नरसावत, 'शिशु एवं बाल मनोविज्ञान' पृ० सं० 168
2. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5, पृ० सं० 15
3. वही, पृ० सं० 15
4. वही, पृ० सं० 15
5. वही, पृ० सं० 26
6. वही, पृ० सं० 19
7. वही, पृ० सं० 27

8. वही, पृ० सं० 27
9. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-1, पृ० सं० 11-12
10. वही, पृ० सं० 12
11. वही, पृ० सं० 12
12. वही, पृ० सं० 19
13. वही, पृ० सं० 20
14. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5, पृ० सं० 228
15. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-2, पृ० सं० 104
16. वही, पृ० सं० 104
17. वही, पृ० सं० 107
18. प्रेमचंद मानसरोवर, भाग-8, पृ० सं० 108
19. वही, पृ० सं० 108
20. वही, पृ० सं० 109
21. सं०-रामदरश मिश्र, ज्ञानचन्द्र गुप्त, कथाकार प्रेमचंद, पृ० सं० 181-182
22. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-7, पृ० सं० 6
23. प्रेमचंद, मानसरावेर, भाग-3, पृ० सं० 15
24. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-7, पृ० सं० 153
25. प्रेमचंद मानसरोवर, भाग-5, पृ० सं० 05
26. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-3, पृ० सं० 85
27. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5, पृ० सं० 115
28. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-1, वही, पृ० सं० 108

....और अन्त में

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। यह मानव के समस्त मानसिक क्रिया कलापों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह मनुष्य के व्यवहार, प्रवृत्ति एवं वातावरण के प्रति उसके समायोजन की भी पड़ताल करता हैं मनोविज्ञान के अन्तर्गत गेस्टाल्टवाद, व्यवहारवाद, प्रवृत्तिवाद, वातावरणवाद, मनोविश्लेषणवाद आदि कई संप्रदाय हैं। मनोविज्ञान के संबंध में सबकी अपनी-अपनी धारणाएँ हैं। मनोविश्लेषणवाद, मनोविज्ञान के सबसे प्रमुख संप्रदाय के रूप में स्थापित है। इसके प्रवर्त्तक सिगमण्ड फ्रायड थे। फ्रायड की मान्यताओं ने बौद्धिक जगत में एक क्रांति ला दी। फ्रायड ने यह स्थापित किया कि मनुष्य की मानसिक एवं शारीरिक प्रक्रियाओं को कोई प्रेरक शक्ति संचालित करती है। यह प्रेरक अवयव व्यक्ति का अचेतन मन होता है। अचेतन मन में मनुष्य की इच्छाएँ, प्रवृत्तियाँ, रुचियाँ एवं स्मृतियाँ होती हैं। फ्रायड ने मानव मन के तीन भाग बताए–अचेतन, अवचेतन एवं चेतन। अचेतन में स्थित मनुष्य की दमित भावनाएँ चेतन में आने हेतु हमेशा प्रयत्नशील रहती हैं। बीच में अवचेतन होता है, जो इन प्रवृत्तियों को चेतन में आने से रोककर पुन: अचेतन में भेज देता है। फ्रायड की काम-संबंधी मान्यता (लिबिडो) ने वैचारिक जगत में नवीन परिवर्तन किया। इस मान्यता के अनुसार, मनुष्य के समस्त कार्य-कलापों के पीछे मुख्य संचालक शक्ति 'काम' (लिबिडो) है। मनुष्य के जन्म लेने के साथ ही यह शक्ति अपना कार्य करना शुरू कर देती है।

मनोविज्ञान की वैचारिक परंपरा में एडलर और युंग महोदय अचेतन मन के साथ-साथ चेतन मन को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानते हैं। ये दोनों चिंतक फ्रायड की काम संबंधी अवधारणा से असहमत हैं। एडलर काम के मूल में हीनता की भावना को प्रधानता देते हैं, जबकि युंग को इसके मूल में सुख, शांति और सुरक्षा नज़र आती है।

मनोविज्ञान मनुष्य की प्रकृति एवं उसके मानस जगत का वैज्ञानिक अध्ययन करता है, जबकि साहित्य उसे कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। साहित्य के केन्द्र में भी मनुष्य, उसका जीवन-व्यापार एवं उसकी संवेदना है। इस प्रकार साहित्य का मनोविज्ञान से गहरा संबंध है। दोनों की बुनियादी सामग्री एक है, यद्यपि इनके उद्देश्य एवं कार्य-पद्धति में अन्तर अवश्य है। मनोविज्ञान के उद्‌भव से पूर्व कला और साहित्य को ईश्वरीय देन समझा जाता था। लेकिन मनोविज्ञान की मान्यताओं ने न सिर्फ कला और साहित्य की दुनिया बदल दी, बल्कि उसे सोद्देश्य भी बनाया। मनोवैज्ञानिक कला का मूल आधार व्यक्ति का अचेतन मन मानते हैं। फ्रायड की मान्यता है कि मनुष्य के अंतर्जगत में लगातार उद्वेलित होती संवेदनाएँ एवं दमित इच्छाएँ ही कलाकार की कल्पना

का आधार तैयार करती हैं। मनोविज्ञान की सहायता से रचनाकार को मनुष्य की आंतरिक दुनिया को ही नहीं, बल्कि उसके बाह्यजगत को भी देखने-समझने की वैज्ञानिक दृष्टि मिलती है। यह मनोविज्ञान का ही योगदान है कि साहित्य में बिम्ब, प्रतीक, भाषा, शैली आदि में नवीनता का संचार हुआ। आज मनोविज्ञान साहित्य की आधारभूमि है।

प्रेमचंद मानवीय संवेदना के कुशल चितेरे हैं। वे साहित्य में मनोविज्ञान को आवश्यक मानते हैं। प्रेमचंद का यह स्पष्ट मानना था कि मनोविज्ञाान के द्वारा न सिर्फ मनुष्य का बल्कि उसके पूरे परिवेश, समाज एंवं जीवन-जगत के मर्म को समझा जा सकता है। आशय यह है कि मनोविज्ञान की सहायता के बिना मनुष्य एवं समाज की मूल प्रवृत्तियों को नहीं समझा जा सकता। इसी कारण प्रेमचंद किसी रचना के लिए मनोवैज्ञानिक भावभूमि को उत्तम मानते हैं।

बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रमुख शाखा है। इसके अंतर्गत्त जन्म से लेकर किशोरावस्था से पूर्व तक के बालक के मानसिक और शारीरिक कार्य-व्यापारों का सूक्ष्म अध्ययन होता है। बच्चों की सामान्य प्रवृत्तियाँ, कोमलता, जिज्ञासा, उत्सुकता, चंचलता, उत्साह, कल्पना, बच्चों के खेल-कूद एवं उनके हर्ष-विषाद आदि बाल मनोविज्ञान के अध्ययन के दायरे में आते हैं। जन्म लेने के बाद से ही बच्चों के हाव-भाव एवं अंग-संचालन आदि प्रक्रियाओं में परिवर्तन होने लगता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, अपने घर-परिवार एवं परिवेश के प्रति उसकी संवेदनशीलता बढ़ने लगती है। बच्चा एक कच्चे घड़े के समान होता है, जिसे जैसे चाहा जाए, ढाला जा सकता है। इस कारण बच्चे पर उसके वातावरण का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। बच्चे में अनुकरण की प्रवृत्ति काफी तीव्र होती है। इसी दौरान वह अच्छी या बुरी बातें सीखता है। बच्चों में खेल के प्रति सबसे अधिक दिलचस्पी होती है। वस्तुत: खेल के द्वारा ही बच्चों में समाजीकरण की भावना का विकास होता है। बालक के जीवन पर उसके घर-परिवार की स्थिति का काफी प्रभाव पड़ता है। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं, बाहरी दुनिया के प्रभाव में अधिक आने लगते हैं।

प्रेमचंद की कहानियों में बाल मनोविज्ञान की यात्रा करना बच्चों के इन्द्रधनुषी संसार में विचरण करना है। इन कहानियों में बाल जीवन के इतने रंग एवं छवियाँ हैं कि मन एकबारगी बचपन की दुनिया में लौट जाता है। कहानियों को पढ़ते हुए हम कब बच्चा बन जाते हैं, यह पता ही नहीं चलता। प्रेमचंद ने दो तरह की कहानियाँ लिखी हैं। एक जो शुद्ध रूप से बच्चों के लिए हैं और दूसरी जो बच्चों को पात्र बनाकर लिखी गई हैं। बालकों के लिए लिखी गई कहानियों के अधिकांश पात्र जानवर हैं, लेकिन वे चेतनाहीन प्राणी नहीं हैं। वे मनुष्य के जीवन-व्यापार के साथ

सक्रिय हैं। वे साहसी, बुद्धिमान एवं स्वामिभक्त हैं। लेखक ने पशु चरित्रों का इतना स्वाभाविक चित्रण किया है कि बच्चों के साथ उनका गहरा तादात्म्य स्थापित होता नजर आता है। जानवरों के कारनामें बच्चों में रोमांच पैदा करते हैं और उनकी बहादुरी, बच्चों में साहस की भावना जगाती है। बाल हृदय को संवेदित करने में ये कहानियाँ पीछे नहीं रहतीं। बच्चे की कल्पना एवं जिज्ञासा के लिए इनमें पर्याप्त गुंजाइश है। ऐसी सभी कहानियाँ सीखभरी हैं। लेकिन कहीं–कहीं उनमें सीधे उपदेशात्मकता आ गई है, जो रोचकता में बाधा पैदा करती है। वस्तुत: इसके पीछे प्रेमचंद का आदर्शवाद है। बाल कहानियो में भी वे भाग्य, ईश्वर और देवता से नहीं बच सके हैं। जानवर की कहानियों के नाम पर लेखक ने कुछ व्यर्थ की कहानियाँ भी लिख दी हैं, जो कतई बालोपयोगी नहीं हैं। जानवरों से संबंधित होने के कारण उन्हें बाल कहानियों में शामिल कर लिया गया है। वैसे वे विशुद्ध शिकार-कथाएँ हैं। **'नादान दोस्त'** लेखक की सर्वश्रेष्ठ बाल कहानी है। इसमें बाल सुलभ जिज्ञासा, उत्सुकता, मासूमियत एवं कल्पना का मनोरम संसार रचा गया है। बाल मनोविज्ञान का उत्कृष्ट रूप इस कहानी में देखने को मिलता है। **'बीमार बहन'** लेखक की एकमात्र बाल लघु कथा है। **'कुत्ते की कहानी'** को कहानी के रूप में लिखा गया है, लेकिन वह किसी बाल उपन्यास से कम नहीं है।

प्रेमचंद की बाल कहानियाँ सहज, बोधगम्य एवं पठनीय हैं। प्रेमचंद हिन्दी के साथ-साथ उर्दू के भी कथाकार हैं। इस कारण उनकी अधिकांश कहानियों में उर्दू के कुछ कठिन शब्द आ गए हैं। प्रेमचंद इन कहानियों में मुहावरों, कहावतों एवं सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग करते हैं। बालकों के भाषा-संस्कार एवं ज्ञान-समृद्धि हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है। प्रेमचंद ने तीन सौ के करीब कहानियाँ लिखी हैं। उनका अनुभव-संसार काफी विस्तृत था और मनोविज्ञान पर पकड़ भी मज़बूत थी। इसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने बच्चों के लिए कम लिखा है कहानियों की संख्या कम होने के कारण विषय-वैविध्य का अभाव भी स्पष्ट नज़र आता है।

बाल चरित्रों को लेकर लिखी गई प्रेमचंद की कहानियों में बाल मनोविज्ञान का सुन्दर समावेश हुआ है। इन कहानियों में बालकों की जीवंत छवियां निर्मित हुई हैं। प्रेमचंद बचपन को नहीं भूल पाते। बचपन की मोहक स्मृतियाँ हमेशा उन्हें गुदगुदाती रहती हैं। कहानियों में अक्सर वे बचपन की दुनिया में लौट जाते है। इससे यह भी पता चलता है कि वे बालकों को कितना महत्व देते थे।

प्रेमचंद की बालकों के ऊपर लिखी गई कहानियों में बाल मनोविज्ञान के विविध रूप देखने

को मिलते हैं। बच्चों की जिज्ञासा, कुतूहल, भोलापन, कल्पना, उत्साह, कोमलता एवं मासूमियत का जीता-जागता स्वरूप इन कहानियों में है। प्रेमचंद ने बालकों की अनोखी दुनिया को उसके स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है। बच्चों की शरारतें, चुहलबाजियाँ एवं उछल-कूद के साथ-साथ उनकी समझदारी तथा बच्चों में अंतर्निहित मानवीय भावनाओं के दृश्य इन कहानियों में भरे पड़े हैं। कई जगह बच्चों का उदात्त चरित्र उभरकर सामने आया है। यही प्रेमचंद के लेखन की सोद्देश्यता है। वे बच्चों को केवल गुड्डे-गुड़ियों में उलझाए रखना नहीं चाहते। वे बच्चों को समाज की मुख्यधारा का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। प्रेमचंद यह नहीं चाहते हैं कि बच्चों को केवल नासमझ, नादान एवं बचकाना समझा जाय। इसलिए उनकी कहानियों में कई जगह बच्चों की निश्छलता, सूझबूझ एवं भोलेपन के आगे बड़ों का दाँवेपेंची समाज बौना होता नजर आता है।

प्रेमचंद के बालपात्र किसी अन्य दुनिया के चमत्कारी बच्चे नहीं हैं, बल्कि वे इसी समाज की उपज हैं। उनकी जड़ें समाज में गहरे स्तर तक समाई हुई हैं। ये बच्चे परिस्थितियों के मारे हैं और अभाव में पलते है। वे बचपन से ही संघर्ष करते हैं, किन्तु हार नहीं मानते। वे छोटी उम्र के 'प्रौढ़' बच्चे हैं, लेकिन उनमें सभी बाल सुलभ प्रवृत्तियाँ अपने मौलिक रूप में उपस्थित है-यही प्रेमचंद की सफलता है।

खेल-खिलौने और मिठाई, ये तीनों बाल जीवन के आभूषण हैं। प्रेमचंद ने बच्चों के इस मनोविज्ञान को सूक्ष्म ढंग से पकड़ा है। उनकी कहानियों में खेल-खिलौने एवं मिठाई के प्रति बच्चों की ललक मनोरम ढंग से चित्रित हुई है। यही नहीं, बच्चों के हाव-भाव, अंग-संचालन, बातचीत एवं उनके रूठने-मचलने के प्रसंगों में भी लेखक ने बाल मनोविज्ञान का कुशलता के साथ पालन किया है। बच्चों की बातचीत में उनकी जिज्ञासा, कल्पना, अबोधपन, उत्साह एवं हाजिर जवाबी के दृश्य देखने योग्य हैं। कई जगह छोटे बच्चों की तोतली बोली उनकी जीती-जागती प्रतिमा गढ़ डालती है। प्रेमचंद ने अपने बालपात्रों के नाम आम जन-जीवन से लिया है। खुन्नू, मुन्नू, झुनिया, लक्षमन, कुन्ती, हलधर, रेवती, भोंदू, नूरे, शम्मी जैसे नाम मन में कोमल संवेदनाओं की सृष्टि करते हैं।

प्रेमचंद की अनेक कहानियों में बच्चे गौण रूप में चित्रित हैं। वे अचानक प्रकट हो जाते हैं और अपने भोलेपन एवं चंचलता की सजीव उपस्थिति दर्ज करके गायब हो जाते हैं। लेकिन इस अल्प समय में ही उनकी मोहक छवि दिल-दिमाग पर अंकित हो जाती है। बाल मनोविज्ञान के मर्म को गंभीरता से समझे बिना ऐसी रचना संभव नहीं है और प्रेमचंद इसके पारखी हैं।

प्रेमचंद के यहाँ बच्चों के साथ उनके माँ-बाप के संबंधों का भी चित्रण हुआ है। इसमें माँ वात्सल्यमयी एवं त्याग की मूर्ति है, जबकि पिता बच्चे के प्रति उपेक्षित भाव रखने वाला दिखाया गया है। मातृस्नेह से वंचित बालकों एवं सौतेली माताओं की प्रेमचंद के यहाँ कमी नहीं है। अपने पिता एवं सौतेली माँ की उपेक्षा का बालमन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, कहानियों में उसका मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। बाल कहानियों की तरह बालकों के बारे में लिखी गई कहानियों में जानवर बच्चों के संगी-साथी के रूप में उपस्थित हुए हैं। इन दोनों की एक-दूसरे के प्रति गहरी सहानुभूति एवं लगाव है। प्रेमचंद के बालपात्रों में बालिकाओं की संख्या अत्यंत कम है। प्रेमचंद ने नारी चरित्र को लेकर तमाम कहानियाँ लिखीं, लेकिन बालिकाओं को केन्द्र में रखकर लगभग नहीं के बराबर लिखा। प्रेमचंद पर कभी-कभी बालकों का चरित्र-चित्रण अतिरंजित ढंग से करने का आरोप लगता रहा है। वस्तुतः इसके पीछे उनका आदर्शवाद है। आदर्श की स्थापना के लिए कभी-कभी वे अपने बालपात्रों के अंदर प्रवेश कर जाते हैं और बालकों के मुख से अपनी बात कहने लगते हैं।

प्रेमचंद की कहानियों में तरह-तरह के बालचरित्रों का रूपांकन हुआ है। बालकों की सतरंगी दुनिया का विहंगम दृश्य उनकी कहानियों में देखने को मिलता है। अंत में, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से कुछ शब्द उधार लेकर यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नज़र नहीं आती कि प्रेमचंद बाल हृदय का कोना-कोना झाँक आए थे।'

ग्रन्थानुक्रमणिका

1. आधार ग्रन्थ

2. संदर्भ ग्रन्थ

3. पत्र-पत्रिकाएँ

आधार ग्रन्थ

प्रेमचन्द – मानसरोवर, भाग-2, 3
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998

प्रेमचंद – मानसरोवर, भाग-1, 4, 5, 6, 7, 8
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1997

प्रेमचंद – प्रेमचंद रचनावली, भाग-11, 12, 13, 14, 15, 18
सं०-रामआनन्द,
जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996

संदर्भ ग्रन्थ

अन्तोन माकारेंको – एक पुस्तक माता-पिता के लिए
अनु० जगदीशचन्द्र पाण्डेय
प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1984

आरती राजहंस – बाल विकास एवं मानवीय संबंध,
बिहारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1986

आशा खरे – खेल खिलौने एवं बाल विकास
बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1988

सं०-इन्द्रनाथ मदान – प्रेमचंद प्रतिभा
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1967

एम० ए० शाह – बाल मनोविज्ञान
आगरा विश्वविद्यालय, 1969

कमल किशोर गोयनका – प्रेमचंद : अध्ययन की नई दिशाएँ
साहित्य निधि, दिल्ली, 1981

सं० कमल किशोर गोयनका – प्रेमचंद विश्वकोष, भाग-2
प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1981

कालिका प्रसाद – बृहद हिन्दी कोश,
ज्ञानमण्डल प्रकाशन लि०, वाराणसी, 1997

सं० कोमल कोठारी — प्रेमचंद के पात्र
विजयदान देथा — अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1970

गंगाधर झा — आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1977

गिरिधर प्रसाद शर्मा — हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1978

गौतम सचदेव — प्रेमचंद : कहानी शिल्प
यूनाइटेड बुक हाऊस, दिल्ली, 1982

सं० छाए क्वो ह्वोई, छ्येन युङ मिङ मृत्युबोध — चीनी समालोचकों की नज़र में प्रेमचंद
विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह, पेइचिंङ-1988

जॉन होल्ट — बच्चे असफल कैसे होते हैं,
अनु०-पूर्वायाज्ञिक कुशवाहा, एकलव्य प्रकाशन, भोपाल, 1996

जैनेन्द्र कुमार — साहित्य का श्रेय और प्रेय
सं० प्रदीप कुमार
पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991

सं० दयानन्द पाण्डेय — प्रेमचंद : व्यक्तित्व और रचनादृष्टि
भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1982

सं० देवेन्द्र कुमार देवेश — किशोर साहित्य की संभावनाएँ
धरोहर, साहिबाबाद, 2001

नन्ददुलारे वाजपेयी — प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन
हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1956

सं०-निर्मला जैन — प्रेमचंद : भारतीय साहित्य संदर्भ
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988

निर्मला सारडा — बच्चन के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
ग्रन्थ विशेष प्रतिष्ठान, सतारा, 1994

निरंकार देव सेवक — बालगीत साहित्य : इतिहास एवं समीक्षा
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1983

प्रताप नारायण टंडन – प्रेमचंद
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969

प्रेमचंद – साहित्य का उद्देश्य
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983

प्रेमचंद – विविध प्रसंग, भाग- 3
सं०-अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962

प्रधान सं० फ० म० वोल्कोव – मनोविज्ञान
अनु० सुरेन्द्र कुमार, बुद्धप्रकाश भट्ट
प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1990

फादर कामिल बुल्के – अंग्रेजी हिन्दी कोश
एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि० , नई दिल्ली, 2000

फ्रायड – मनोविश्लेषण
अनु० देवेन्द्र कुमार, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली 19

मधु जैन – यशपाल के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, 1977

मरिया मांटेसरी – ग्रहणशील मन
अनु० सरला मोहनलाल, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1999

मुक्तिबोध – मेरी माँ ने मुझे प्रेमचंद का भक्त बनाया (आलेख पुस्तिका)
प्रेमचंद साहित्य संस्थान, गोरखपुर, 2000

मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' – उर्दू हिन्दी शब्दकोश,
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
प्रथम संस्करण–1959

सं०-रामदरश मिश्र – कथाकार प्रेमचंद
ज्ञान प्रकाश गुप्त
राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1997

वसीली सुखोम्लीन्स्की – बाल हृदय की गहराइयाँ
अनु० योगेन्द्र नागपाल, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1986

सं० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – प्रेमचंद
कीर्ति प्रकाशन, गोरखपुर, 1980

शशी चित्तौड़ा – शिशु एवं बाल मनोविज्ञान,

हरिशचन्द्र नरसावत – शिवा पब्लिशर्स, उदयपुर, 1996

शारदा मणि – किशोर मनोविज्ञान
हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1993

श्री प्रसाद – हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा
लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1985

लेव तोलस्तोय – शिक्षा शास्त्रीय रचनाएँ
सं०-स० फ० येगोरोव, अनु०-बुद्धप्रकाश भट्ट
प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1987

सं०-सत्येन्द्र – प्रेमचंद
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975

सुरेन्द्र विक्रम – हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास
साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1992

पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल (मासिक) – बाल विशेषांक, नवम्बर, 2000 सं० सुभाष सेतिया, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

कथादेश (मासिक) – जून, 1999, सं० हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन, नई दिल्ली,

'राष्ट्रीय सहारा' (दैनिक) – उमंग, रविवार, 17 जनवरी, 1999, सं० विभांशु दिव्याल, नई दिल्ली

हंस (मासिक) – अर्द्धशती विशेषांक, अगस्त-सितम्बर, 1997, सं० राजेन्द्र यादव
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली